विज्ञान

कक्षा 9 के लिए पाठ्यपुस्तक

भाग II

201
216
231
247
267
286
299

डी. बालासुब्रमणियन
जी.आर. भट
वी.के. गौड़
जे.एस. गिल
के.बी. गुप्ता
के.आर. जनार्धनन
आर. जोशी
वी.बी. कामले
वी.जी. कुलकर्णी
के.एम. पंत
सी.जे. संचोरावाला
एम. गाडगिल
आर. गडागकर
आर. डैनिअल



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अगस्त 1989
भाद्र 1911
P.D. 140 T — SD

प्रकाशन सहयोग

सी. एन. राव **अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग**

प्रभाकर द्विवेदी **मुख्य संपादक**
दिनेश सक्सेना **संपादक**
शर्मा दत्त **सहायक संपादक**

यू. प्रभाकर राव **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
सुरेन्द्र कान्त शर्मा **उत्पादन अधिकारी**
टी०टी० श्रीनिवासन **सहायक उत्पादन अधिकारी**
राजेन्द्र चौहान **उत्पादन सहायक**

आवरण : शांतो दत्त

मूल्य : रू. 6.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा ग्राफिक कंपोज़र्स, 48, सेन्ट्रल मार्किट, सफदरजंग एन्कलेव, नई दिल्ली द्वारा कंपोज होकर होली फ़ेथ इंटरनेशनल प्रा.लि. बी 9-10, साइट नं. 4, साहिबाबाद (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो० क० गांधी

जीवन पद्धति : वास स्थान–रहने का स्थान तथा जीव

भूमिका

अपने आस पास के विविध सजीवों को देखें। ये सजीव जिनमें वृक्ष जैसे पीपल, आम, नीम, नारियल, अथवा यूकेलिप्टस, पौधे जैसे गुलाब, चमेली, विसर्पी लता, क्रोटॉन और केला, चावल, गेहूं अथवा मक्का, झाड़ियां जैसे स्कूल के चारों ओर मेढ़, कीकर, जानवर जैसे कुत्ता, भैंस, बिल्ली, हाथी अथवा ऊंट, पक्षी जैसे कोवा, तोता, चील, मोर, फाख्ता अथवा कबूतर, कीट जैसे मक्खी, मकड़ी, चींटी, दीमक, खटमल आदि हो सकते हैं। आप देखेंगे ये सजीव कितने भिन्न हैं फिर भी वे सब एक ही क्षेत्र में रहते हैं तथा फलते फूलते हैं। जिस स्थान पर वे रहते हैं वह उनके अनुकूल होना चाहिए, यदि ऐसा नहीं होता तो वे वहां नहीं रह सकते। अब आप विस्तार से वास-स्थानों तथा वे अपने निवासियों की कैसे सहायता करते हैं, के विषय में पढ़ेंगे। आप यह भी देखेंगे कि जीव स्वयं को अपने वातावरण के अनुकूल कैसे बनाते हैं। कभी-कभी जन्तु भी कुछ समय के लिए वातावरण के लक्षणों को बदल देते हैं। जन्तुओं तथा वास-स्थानों की इस पारस्परिक क्रिया के अध्ययन से हम अपने विशाल वातावरण–पृथ्वी अथवा जीव मण्डल के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

15.1 वास-स्थान

जीवों के लिए वास-स्थान ऐसा होना चाहिए जो जीव को जीवित रहने, जनन करने तथा फलने फूलने के लिए भोजन, आश्रय तथा अनुकूल जलवायु प्रदान कर सके। जीवों के लिए ऐसा **वास-स्थान अनुकूल है। आवास शब्द का अर्थ है** रहने का स्थान। जीवों का आवास किसी प्रदेश के संपूर्ण वातावरण का एक भाग है। उदाहरण के लिए बन्दर और लंगूर के रहने का आवास दक्षिण भारत, बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका, मलाया तथा सिंगापुर के वन हैं। इसका अर्थ केवल वन से अथवा किसी भी वन से नहीं है बल्कि इसका अर्थ इन उष्णकटिबंधीय देशों के वनों के वातावरण इनकी जलवायु, मौसम तथा यहां पर पाये जाने वाले पेड़ पौधों, जन्तुओं आदि से है।

आवास के भौतिक तथा जैविक दो घटक होते

हैं। भौतिक घटक में भौगोलिक अवस्थाएं जैसे ताप, वर्षा मौसम, जलवायु तथा पानी हैं। जैविक घटक का अर्थ उन सजीवों से है जो उस आवास में रहते हैं। उदाहरण के लिए चीते के आवास में कुछ जैविक घटक जैसे छोटे जानवर होने चाहिए जिनका शिकार चीता करके खा सके। चीते के आवास में छायादार पेड़ तथा झाड़ियां भी होनी चाहिए जिनमें वह शिकार करने के लिए छुप सके। हिमालय के वनों तथा सुन्दरवनों में हिमालयन बाघ तथा बंगाल बाघ पाए जाते हैं, ये वन बाघ को जैविक आवश्यकताएँ प्रदान करते हैं (चित्र 15.1)। अन्य कोई भी वन जैसे उत्तर-पश्चिमी अमेरिका के पथरीले पहाड़ बाघ के वास स्थान नहीं हो सकते। भौतिक तथा जैविक लक्षण जीव के अनुकूल होने चाहिए अन्यथा जीव प्रजनन नहीं कर सकता और न ही फल फूल सकता है।



चित्र 15.1 बंगाल टाइगर (हैदराबाद के श्री थिरूमालेश्वर के सौजन्य से)।

15.2 सूक्ष्मावास

एक ही आवास में भी भिन्नता होती है। आइए हम भूमि का उदाहरण लें। भूमि के किसी एक क्षेत्र की जलवायु, दूसरे क्षेत्र की जलवायु से भिन्न हो सकती है। भारत में ही लद्दाख की जलवायु और वातावरण, केरल की जलवायु और वातावरण से बहुत भिन्न है। केला और नारियल जो केरल में अत्याधिक मात्रा में पैदा होते हैं, लद्दाख में बिल्कुल भी नहीं पाये जाते हैं। लद्दाख में इन पौधों को जलवायु, पानी, मिट्टी और पोषक तत्व इनकी आवश्यकतानुसार नहीं

मिल पाते हैं। यहां तक कि बड़े आवास में भी, जिसे स्थलीय आवास कहते हैं, ऐसे क्षेत्र होते हैं जो कुछ जीवों के लिए अनुकूल होते हैं जबकि दूसरे जीवों के लिए अनुकूल नहीं होते। किसी भी आवास में किसी भी क्षेत्र को सूक्ष्मावास कह सकते हैं जिसमें ऐसे विशेष गुण हों जो अन्य जीवों की अपेक्षा कुछ विशेष जीवों के लिए अनुकूल हों।

दूसरा उदाहरण हम चूहों का ले सकते हैं। चूहे विभिन्न परिवार या वर्ग के होते हैं। इनमें से कुछ स्थलीय होते हैं, जैसे खेतों में पाये जाने वाले सामान्य चूहे। ये चूहे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश आदि के खेतों में रहना पसन्द करते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि राजस्थान के मरुस्थल क्षेत्रों में पाए जाने वाले चूहों का व्यवहार और आदतें दूसरे चूहों से भिन्न होती हैं। इनका साइज छोटा होता है। ये भूमि में बिल बनाकर रहते हैं, बहुधा रात को बाहर निकलते हैं और इन्हें अधिक पानी की आवश्यकता भी नहीं होती है। इनके लिए उत्तर प्रदेश अथवा मध्यप्रदेश के मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा राजस्थान के मरुस्थल का सूक्ष्मावास अधिक उपयुक्त होता है।

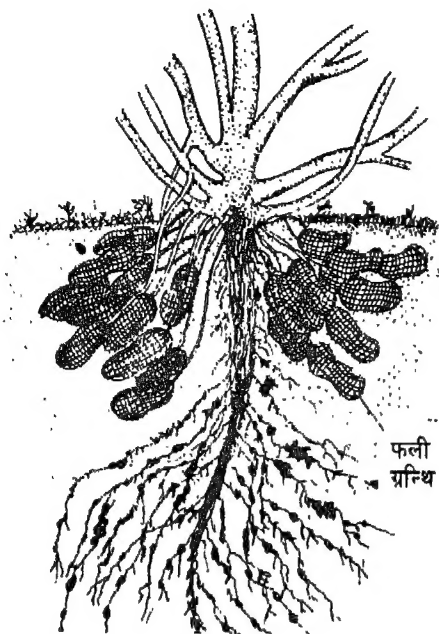
आप पेड़ों तथा चट्टानों पर भी सूक्ष्मावास को देख सकते हैं। ऐसे भी जीव हैं जो पेड़ों की छाल तथा चट्टानों की दरारों में पाये जाते हैं। यह इन जीवों का सूक्ष्मावास है। सूक्ष्मावास का शब्द क्षेत्र के सम्बन्ध में उपयोग किया जाता है न कि आबादी के क्षेत्र पर।

15.3 परस्पर निर्भरता

प्रायः किसी आवास में दो स्पीशीज़ एक दूसरे की भलाई के लिए परस्पर निर्भर रहते हैं। प्रत्येक स्पीशीज़ अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूसरे पर निर्भर होती है। आपने ऐसे छोटे पक्षियों को देखा होगा जो भैंस के ऊपर बैठते हैं। यह पक्षी जिसे एग्रेट कहते हैं हर समय भैंस के ऊपर सवारी करता है और भैंस की खाल तथा सींगों पर स्थित जूं, किलनी तथा अन्य कीटों को खाता है। इससे भैंस तथा एग्रेट पक्षी दोनों को लाभ होता है। भैंस कष्टकारी कीटों से छुटकारा पाती है और एग्रेट पक्षी को मुफ्त में भोजन मिल जाता है। कुछ अन्य पक्षी जैसे किलनी पक्षी भी राइनोसिरस (गैंडा) का वैसे ही सहभागी है जैसे एग्रेट भैंस का। अफ्रीका में ऑस्ट्रिच पक्षी जेब्रा और बारहसिंगा के झुण्डों के साथ रहते हैं। ये (ऑस्ट्रिच) इनकी रखवाली करते हैं और इसके बदले में इनसे भोजन प्राप्त करते हैं।

यहां तक कि पौधे और सूक्ष्मजीव भी एक दूसरे की भलाई के लिए सहभागी होते हैं। एक सूक्ष्मजीव, जिसे **राइजोबियम** कहते हैं, मटर, दालों तथा अन्य लैग्यूम के पौधों की जड़ों में रहता है और इन पौधों को वातावरण से नाइट्रोजन प्राप्त करने में सहायता करता है। इसके बदले में पौधे सूक्ष्मजीव को इसकी वृद्धि के लिए पोषक तत्व तथा भोजन देते हैं (चित्र 15.2)।

परजीवी उस वर्ग के जीव हैं जो अपने भोजन, वृद्धि तथा गुणन के लिए दूसरे जीवों पर निर्भर होते हैं। परपोषी जीव को इसके बदले में कुछ नहीं मिलता है। यह केवल परजीवों की वृद्धि के लिए एक संवहन की तरह कार्य करता है, इस प्रक्रिया में परपोषी को बहुत हानि होती है। मनुष्य में मलेरिया फैलाने वाला रोगाणु एक परजीवी है। यह परजीवी मच्छर में रहता है और जब मच्छर किसी मनुष्य को काटता है तब ये



चित्र 15.2 लैग्यूम के पौधे की जड़ तथा राइजोबियम में सहजीवी संबंध।

परजीवी मनुष्य के रक्त में चला जाता है जहां इसकी वृद्धि होती है, जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य को मलेरिया का बुखार हो जाता है। फीताकृमि अन्य परजीवी है जो पशु या सूअर से मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है और मनुष्य की आंतों में वृद्धि करके यह लारवा से कृमि में बदल जाता है।

किसी वास-स्थान में, जलवायु तथा जैविक घटकों में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। अगर किसी क्षेत्र में अधिक वृक्ष होंगे तो वह क्षेत्र ठण्डा होगा, वहां की मिट्टी अच्छी होगी और इसमें अधिक जीव रह सकेंगे। वृक्ष और पर्ण समूह आवास में, ताप तथा आर्द्रता को प्रभावित करते हैं। हम इनके विषय में विस्तृत वर्णन बाद में पढ़ेंगे।

15.4 भूमि, पानी तथा हवा वास स्थान के रूप में

मछली पानी में रहती है, आदमी भूमि पर रहता है तथा चील हवा में उड़ती है। आवास के प्रकार जीवों के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। जो जीव पानी में रहते तथा प्रजनन करते हैं उन्हें जलीय (aquatic) कहते हैं (लेटिन में अक्वा का अर्थ है पानी)। जो जीव जमीन पर रहते हैं तथा वहां पर प्रजनन करते हैं उन्हें स्थलीय (Terrestrial) कहते हैं (लेटिन भाषा में टेरा शब्द का अर्थ भूमि है)। जो जीव अपनी क्रियाएं आकाश में करते हैं उन्हें वास्तव में आकाशी या वृक्षीय (arboreal) कहते हैं। "अर्बोर" शब्द का अर्थ है पेड़ या शाखाएं और यह उचित भी है क्योंकि पक्षी अपने घोंसले पेड़ों पर बनाते हैं और वहीं विश्राम करते हैं। इसके अतिरिक्त पक्षी अपनी अधिकतर क्रियाएं हवा में या उड़ते समय ही करते हैं। चील तथा अबाबील इसके दो अच्छे उदाहरण हैं।

जीवों का वर्गीकरण जैसे जलीय, स्थलीय तथा आकाशी हमेशा लागू नहीं होता। आप मेंढक या मगरमच्छ का वर्गीकरण कैसे करेंगे? ये किसी नदी के तट पर रहना पसन्द करते हैं जिससे ये जल तथा स्थल दोनों को आवास के रूप में उपयोग कर सकें। ऐसे जीवों को **जलस्थलचर** (amphibian) कहते हैं। ग्रीक भाषा में एम्फी का अर्थ दोनों और बाओस का अर्थ जीवन है।

एक ही आवास में कई प्रकार के जीव आपस में मिल कर रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि आवास अपने निवासियों को भोजन तथा जलवायु दोनों देता है जिससे वे अच्छी तरह से वृद्धि तथा प्रजनन कर सकें। उष्णकटिबंधीय वन चूहे, खरगोश, हिरण, भालू, शेर, बन्दर, वन पक्षी, बांस तथा साल के पेड़, तरह तरह की विसर्पी

लताओं तथा झाड़ियों, सांप, मेंढक विभिन्न प्रकार के कीट, मछलियाँ जैसे मुरेल, रोह, ट्राउट, कार्प तथा सैंकड़ों अन्य जीवों के आवास हैं। अधिकाँश स्पीशीज की इस आवास में भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। इस कार्य के लिए पूरा तंत्र संतुलित होता है।

यह संतुलन किसी स्पीशीज की आबादी पर भी लागू होता है। यदि कीटों की जनसंख्या अधिक हो जाए तो मेंढक, सांप, पक्षी कीटों को खाकर उनकी आबादी कम कर देंगे। ये परभक्षी अपने शिकार की आबादी कम करते हैं। इन परभक्षियों की भी संख्या कम हो जाती है जब इनके परभक्षी इन्हें खाते हैं। जनसंख्या नियंत्रण के लिए परभक्षी-शिकार की यह शृंखला कब तक चलती रहेगी? अगर किसी वन में बाघ की संख्या अधिक है और हिरण या अन्य जानवरों की कम, तो बाघ की संख्या अपने आप ही कम होती जाएगी। बाघों को इस प्रकार से भोजन प्राप्त न होने के कारण उनकी आबादी नष्ट होती जाएगी। जैसे-जैसे बाघों की संख्या कम होगी वैसे-वैसे ही हिरण कम मरेंगे और हिरणों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती जाएगी। आपने देखा कि किसी वास-स्थान में रहने वाले विभिन्न प्रकार के जीव किस प्रकार जैविक जनसंख्या में पारस्परिक संतुलन बनाये रखते हैं।

दूसरा उदाहरण जलीय पौधे का लें जो किसी सरोवर या झील में बहुत तेजी से वृद्धि करता है। इस पौधों को जलकुम्भी (वाटर हायासिंथ) कहते हैं। इन पौधों की वृद्धि इतनी शीघ्रता से होती है कि ये पौधे तालाबों तथा झीलों के बहुत से पोषक तत्वों का उपयोग कर लेते हैं। दूसरे जीव पोषक तत्वों की कमी के कारण नष्ट हो जाते हैं तथा सारा तालाब अथवा झील जलकुम्भी से ढक जाती है। तब झील में अन्य जीव जीवित नहीं रह पाते। ऐसी स्थिति हैदराबाद में स्थित सुन्दर झील हुसैन सागर में कुछ साल पहले हुई थी। तब जलकुम्भी को मशीनों द्वारा तथा जीवीय विधियों से हटाया गया था जिससे झील को फिर से विभिन्न जीवों के आवास के लिए उपयुक्त बनाया गया।

क्रियाकलाप—1

अपने आस पास के परिवेश में पाए जाने वाले समस्त जीवों के नाम लिखो। उनका जलीय, स्थलीय, आकाशी तथा जलस्थलचर आदि के अनुसार वर्गीकरण करो। क्या आपने वहां जलीय पौधे देखें हैं? आप कितने प्रकार के जलस्थलचर जीवों की सूची बना सकते हैं।

15.5 अनुकूलन

जीव ऐसे आवास में रहते हैं जो उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। ऐसे जीव जो अपने आवास से सहयोग करते हैं वे दूसरे जीवों की अपेक्षा वहां सफलतापूर्वक जीवित रहते हैं और प्रजनन करते हैं। मरुस्थली चूहा इसका एक उदाहरण है। ये चूहे मैदानी चूहे की अपेक्षा वहाँ के वातावरण से अच्छी तरह अनुकूलित हो जाते हैं। ऐसे ही ऊंट भी भैंस की अपेक्षा मरुस्थल में अच्छी प्रकार रहने के अनुकूल होता है। तो हम यह कह सकते हैं कि मरुस्थली चूहे तथा ऊंट ने अपने आप को उस आवास या वातावरण के अनुकूल बना लिया है।

15.6 जलीय वास-स्थान तथा अनुकूलन

आओ, जलीय आवास जैसे पोखर, तालाब, झील,

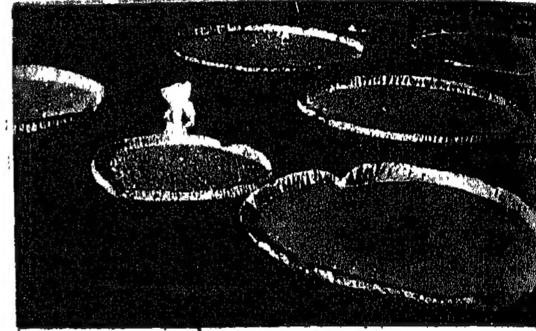
झरने, नदियां, नाले आदि के विषय में पढ़ें। जो जीव इन वास स्थानों में पाए जाते हैं उन्हें बहुत से भौतिक कारकों का सामना करना होता है। ये भौतिक कारक हैं ऑक्सीजन तथा प्रकाश की उपलब्धता, दाब में परिवर्तन, गति में अवरोध, लवण की सांद्रता आदि।

आओ पोखरों, झीलों और झरनों में पाए जाने वाले पौधों को देखें। आपको कुछ पौधे जैसे हाइड्रिला, लेम्ना, जलकुम्भी तथा शैवाल पानी पर स्वतंत्र रूप से तैरते दिखाई देंगे। इनमें कुछ पौधे ऐसे भी हैं जिनकी जड़ें मिट्टी में होती हैं तथा उनके कुछ भाग जैसे पत्तियाँ और फूल पानी पर तैरते हैं। इसके कुछ उदाहरण हैं जैसे कमल या लिली।

क्रियाकलाप–2 से पता लगेगा कि पानी के अन्दर रहने वाले पौधे कैसे अनुकूलित होते हैं और वे वहां कैसे वृद्धि करते हैं। यहां पर पौधे का अनुकूलन उत्प्लावकता के लिए होगा जिससे पौधा क्षय होने से बच सकेगा। यदि आप अपना हाथ अथवा पैर काफी समय तक पानी में डुबोए रखें तो हाथ पैर पर सिकुड़न हो जाएगी। लेकिन कमल अथवा लिली के पौधों में ऐसी सिकुड़न नहीं होती।

क्रियाकलाप–2

आपको हाइड्रिला के पौधे, प्राकृतिक स्पंज, जलकुम्भी या लिली के पौधों की आवश्यकता होगी। लिली या जलकुम्भी के पौधों के वृंत्त (stalk) को देखें। आप इनके वृंत्त को काटकर तथा पकाकर खा सकते हैं। इन पौधों के वृंत में बहुत से छिद्र तथा खोखलापन होता है जो इन्हें पानी में सीधा रखने में सहायता करता है। जल लिली के बड़े आकार के पत्तों को देखें (चित्र 15.3)। इसका आकार वृत्त या बड़े डिस्क के समान होता है जिससे यह पानी में तैरता रहता है। उत्प्लावकता की अनुकूलता के लिए इसे पानी की सतह पर होना चाहिए जिससे कि यह प्रकाश संश्लेषण कर सके। पानी में कभी भी इसकी पत्ती सिकुड़ती या नष्ट नहीं होती है। पत्ते की सतह पर एक तेलीय परत होती है। यह पत्ते को जलअवरोधी बना देती है और उसे पानी में गीला होने या क्षय होने से बचाती है। ये पत्ते मछली के शल्क के समान होते हैं जो मछली की त्वचा को जलसह बनाते हैं।



चित्र 15.3 वाटर लिली। तैरती पत्तियों सहित एक जलीय पौधा। इसका तना मुख्यतः खोखला होता है और पत्तियाँ चौड़ी गोलाकार होती हैं और सरलता से पानी में गीली नहीं होती।

जलीय जीव अपना खनिज लवण पानी से प्राप्त करते हैं। इन आवासों में लवण की सांद्रता भिन्न-भिन्न होती है। इसीलिए स्वच्छ जल में मिलने वाली मछलियाँ समुद में जीवित नहीं रह सकती। सामान्य नीली हरी शैवाल, **स्पाइरोगाइरा** तथा **यूलोथ्रिक्स** समुद्र की अपेक्षा तालाबों में पाई जाती है क्योंकि समुद्र में लवण सान्द्रता अधिक होती है।

क्रियाकलाप—3

एक स्लाइड पर **स्पाइरोगाइरा** शैवाल के कुछ तन्तु लें। इस पर एक बूंद पानी की डालें और कवर स्लिप से ढककर इसे सूक्ष्मदर्शी में देखें। अब इस स्लाइड पर लवण का सान्द्र घोल डालें और तन्तुओं की कोशिकाओं में हुए परिवर्तनों को देखें। अब फिर स्लाइड पर पानी डालें और परिवर्तनों का अवलोकन करें। आप इन परिवर्तनों का सम्बन्ध उस पानी में लवण की सान्द्रता, जिसमें तन्तु रखा हुआ था, से लगा सकते हैं।

जलीय जीव की गति भी पानी से प्रभावित होती है। आप अपने हाथ पैरों को पानी की अपेक्षा हवा में आसानी से हिला डुला सकते हैं। जलीय जीवों के शरीर की रचना उनके संचलन के अनुकूल होती है। जलीय पौधा **वेलिसनेरिया** नहरों के बहते हुए पानी में पाया जाता है। इसके पत्ते लम्बे तथा सकरे होते हैं। पत्तों की ऐसी आकृति बहते हुए पानी में बाधक नहीं बनती। इसी प्रकार लिली जैसे जलीय पौधे पानी में कम दाब का अनभव करते हैं क्योंकि इनकी जड़ें पोखर के स्थिर जल में स्थित रहती हैं।

मछली के शरीर की रचना को देखें। इसके शरीर पर शल्क के महत्व को हम पहले ही बता चुके हैं। कुछ मछलियों के पार्श्व में गिल होते हैं। गिल शरीर में वे अंग हैं जो पानी में घुलित ऑक्सीजन को लेने में सहायता करते हैं। गिल की फैली हुई सतह पानी की सतह से पर्याप्त संपर्क प्रदान करती है। ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए यह अनुकल होती है। कुछ मछलियों तथा जलीय कीटों के शरीर में हवा के बुलबुले पाए जाते हैं। ये बुलबुले उत्प्लावकता में सहायता करते हैं। जलीय जीव में शरीर का भीतरी दाब पानी के बाहरी दाब को संतुलित करता है। इस प्रकार का अनुकलन बदलते हुए दाब का सामना करता है।

अब मछली की आकृति देखो। पार्श्व में लगे पंख गति में तथा दिशा में परिवर्तन में सहायता करते हैं और इसकी पूंछ इसके लिए गति नियंत्रक (rudder) की तरह कार्य करती है। मछली का शरीर तैरने के लिए अनुकूल होता है। यदि आप तैराक हों तो सोचें कि जब आप पानी में कूद रहें हों तो आप शरीर को किस स्थिति में रखेंगे। अब आप इस स्थिति की तुलना मछली की आकृति से करें। ऐसी आकृति को धारा रेखित कहते हैं। ऐसी आकृति होने से गति में अवरोध बहुत कम होता है। अब हम व्हेल की आकृति का उसके जलीय आवास से सम्बन्ध देख सकते हैं।

अब हम देख सकते हैं कि मनुष्य आकाश में उड़ने की अपेक्षा पानी में तैरने के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इटली के एक वैज्ञानिक तथा आविष्कारक लिओनार्डो द विन्ची ने ऐसे पंख बनाने का प्रयत्न किया था जिन्हें मनष्य के शरीर से जोड़ कर उड़ा जा सके। अगले अध्याय में पक्षियों के चित्र में देखें कि उड़ते हुए पक्षियों के शरीर की रचना कैसी है। वे उड़ने के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित होते हैं। अब आप चूजों अथवा शुतुरमुर्ग को देखें। ये दोनों वास्तव में स्थलीय हैं। पक्षी उड़ने के लिए कैसे अनुकूलित होते हैं इसका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

15.7 स्थलीय वासस्थान तथा अनुकूलन

स्थलीय वासस्थान में विभिन्न भौतिक घटक होते हैं जैसे मिट्टी, ताप, नमी, आदि। स्थल

विच्छिन्न वासस्थान है क्योंकि इसके बीच में कहीं-कहीं नदियाँ, नाले, समुद्र तथा पहाड़ आ जाते हैं। स्थलीय जीवों को जलीय आवास की अपेक्षा पर्याप्त मात्रा में प्रकाश तथा ऑक्सीजन प्राप्त होता है। पानी जीवों को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। ताप भी स्थलीय जीवों को प्रभावित करता है। प्रकाश की उपलब्धता के कारण ताप भी बदलता रहता है। इन दोनों कारकों के आधार पर स्थल के विभिन्न क्षेत्र हैं जैसे शुष्क और गर्म (मरुस्थल) तथा नम और ठंडा (पहाड़ी तथा मैदानी)। इन क्षेत्रों को क्रमशः मरुद्भिदी तथा समोदभिदीय आवास कहते हैं।

भैंस तथा गाय

भैस तथा गाय दोनों हमें दूध देती हैं। भैंस का दूध गाय के दूध की अपेक्षा अधिक गाढ़ा होता है तथा वसायुक्त होता है। इसलिए दूधिया या प्राइवेट डेरी के किसान गाय की अपेक्षा भैंस रखना अधिक पसन्द करते हैं। भैंस भारत के सभी स्थानों पर पाली जाती है जैसे राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाड, केरल, मेघालय तथा नागालैंड। भैंस का सूक्ष्मावास क्या है?

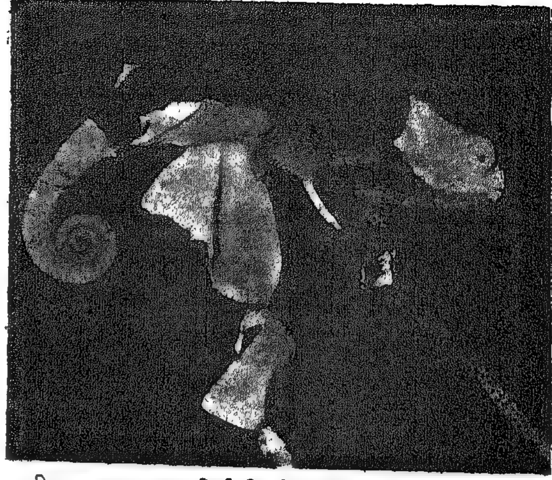
भारत में जो भैंस मिलती हैं उन्हें वास्तव में जलीय भैंस कहते हैं और इनका सूक्ष्मावास है दलदली स्थान जैसे बंगाल, आंध्र प्रदेश, तमिलनाड, अथवा केरल के नदी के तट। यह मिट्टी और पानी में रेलना अधिक पसन्द करती हैं क्योंकि वे भारत की गर्मी सहन नहीं कर पाती हैं। इनकी काली त्वचा पर बहुत कम बाल होते हैं। अगर इनकी त्वचा केवल सफेद होती तो इनको गर्मी कम लगती। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये अधिकतर समय पानी में आराम करती हैं, इसलिए इन्हें जलीय भैंस कहते हैं। शुष्क स्थानों पर रहने वाली भैंसों को न केवल अधिक आराम, पानी और छाया की आवश्यकता होती है बल्कि वे गर्मी में दूध भी पतला देती हैं। तो क्या राजस्थान की डेरी के किसानों को भैंस रखकर लाभ होता है? अब गाय की तरफ देखें। क्या गाय को आपने भैंस की तरह गंदे पानी में रेलते हुए देखा है? क्या यह भैंस से हल्के रंग की नहीं होती है? क्या यह डेरी के किसानों के लिए अच्छा नहीं होगा यदि वे ऐसे पशुओं को चुनें तथा उनका उपयोग करें जो वातावरण में अच्छी तरह रह सकते हों। किसी भिन्न वासस्थान में भैंसे पतला दूध देती हैं और इनकी अधिक देखभाल करनी पड़ती है।

15.8 पौधों तथा जन्तुओं में अनुकूलन के उदाहरण

भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया के उष्णकटिबंधीय वन के पौधे तथा जन्तु वहाँ के वातावरण से अच्छी तरह अनुकूलित होते हैं। आर्किड पौधे इन्हीं वनों में प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

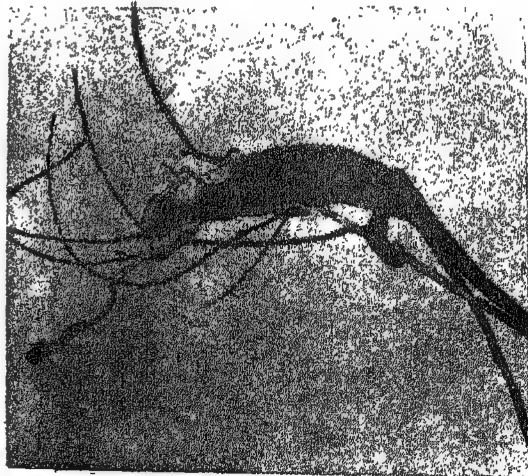
उन्होंने अपने को यहां के बदलते हुए ताप तथा आर्द्रता के अनुकूल कर लिया है। इन पौधों के तने पानी संचय का कार्य करते हैं। इनके पत्ते ऐसे विशेष प्रकार के होते हैं जो शुष्कता को बाहर रख कर पानी को संचित करते हैं। इनकी परिभ्रमी जड़ होती है जो पानी की खोज में रहती है और बरसात के मौसम में जितना अधिक से अधिक हो सके पानी का संचय कर लेती है।

गिरगिट (तमिल में प्रटचौड़ी, तेलगू में उसरवाली तथा हिन्दी में गिरगिट) एक सरीसृप है जो छिपकली तथा इगुआना के जैसा है (चित्र 15.4a)। यह कीटों को पकड़ने के लिए विशेष प्रकार से अनुकूलित होता है। यह देखने में आकर्षक नहीं होता है, इसकी टांगे पतली होती हैं तथा एक लम्बी पूंछ पांचवें पाद के रूप में होती है। इसकी टांगों की दो अंगुलियां शेष तीन अंगुलियों से विपरीत दिशा में होती हैं। इससे गिरगिट में पकड़ने की शक्ति अधिक हो जाती है (आपने तानाजी के विषय में सुना होगा। वे शिवाजी की सेना में जनरल थे। उन्होंने गिरगिट की जाति वाले घोरपाड़ का उपयोग रायगढ़ किले की दीवार पर चढ़ने के लिए किया था। उन्होंने इस जन्तु को ऊपर फेंका। यह जन्तु दीवार से चिपक गया और वह फिर जन्तु से बन्धी रस्सी की सहायता से किले की दीवार पर चढ़ गये)। गिरगिट की आंखें भी बहुत विचित्र होती हैं। वह अपनी आंखों को किसी भी दिशा में घुमा सकता है और इनकी आंखें एक ही समय में अलग-अलग कार्य कर सकती हैं। गिरगिट एक ही समय में अपनी दायीं आंख से आगे की ओर और अपनी बाईं आंख से पीछे की ओर देख सकता है। इसकी जीभ भी विचित्र है। इसकी जीभ जो प्रायः एक



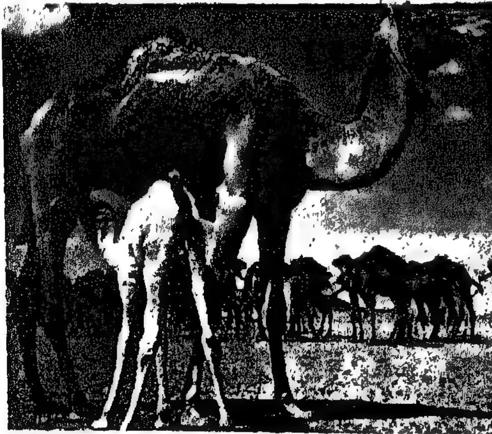
चित्र 15.4 (a) अफ्रीकी गिरगिट : अपनी त्वचा उतार रहा है।

फुट लम्बी होती है वह टेप की तरह मुड़ जाती है और यह इसको अपने मुंह में रखता है। गिरगिट जब अपने शिकार को देखता है तो अपनी जीभ को बड़ी फुर्ती से बाहर निकालता है (चित्र 15.4b)। अपनी त्वचा का रंग बदलना गिरगिट



चित्र 15.4 (b) गिरगिट अपनी लम्बी जीभ की सहायता से शिकार पकड़ रहा है।

का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है। जब यह पेड़ की टहनियों पर होता है तब इसकी त्वचा का रंग हरा हो जाता है और जब चट्टानों पर होता है तब इसकी त्वचा भूरे रंग की हो जाती है। मान लो कुछ दूरी पर एक कीट पत्ते पर बैठा है। गिरगिट धीरे-धीरे वहां आता है और अपनी त्वचा का रंग पत्ते जैसा कर लेता है। बेचारे कीट को पता भी नहीं चलता कि उसका परभक्षी उसके समीप ही है। गिरगिट अपने शिकार के बहुत समीप आता हे और प्रकाश जैसे तीव्र गति से अपनी जीभ को कीट पर फैंक कर उसे पकड़ लेता है। इसके बाद उसी क्षण वह अपनी जीभ को मुँह में ले जाता है और अपनी आंखें बन्द करके आराम करता है। आपने कुछ ऐसे ही लक्षण सामान्य छिपकली में भी देखें होंगे। छिपकली गिरगिट की तरह अपनी आंखों को नहीं घुमा सकती है। इसके पैरों पर निर्वात गद्दियाँ होती हैं जिससे ये किसी वस्तु को अच्छी तरह से पकड़ सकती हैं। इस अनुकूलन से यह छत के ऊपर तथा नीचे आराम से घूम सकती है अथवा दीवार पर तेजी से चढ़ या उतर सकती हैं।



चित्र 15.5 भारतीय ऊँट।

ऊँट अनुकूलन का अन्य उत्तम उदाहरण है (चित्र 15.5)। यह मरुस्थल में बड़े आराम से रहता है जहां इसे रेत के टीलों से निकलना पड़ता है। मरूस्थल में पानी और भोजन की भी कमी होती है। ऊंट वास्तव में मरुस्थल का जहाज है। इसके पैरों को देखें। यह चलते समय अपने पैर का उपयोग करता है और इसके खुर बड़े तलवों से ढके होते हैं जिससे यह गर्म तथा फिसलने वाली रेत पर चल सकता है। यह एक दिन में 100 किलोमीटर तक चल सकता है और दस दिन तक लगातार बिना भोजन तथा पानी के रह सकता है। आवश्यकता होने पर यह रेत पर 20-25 किलोमीटर प्रति घण्टे की चाल से भाग सकता है। इसकी पीठ पर कूबड़ होता है। कूबड़ कुरचना नहीं है बल्कि वास्तव में इसमें भोजन एकत्र रहता है और वसा से भरा होता है। आप देख सकते हैं कि जब ऊंट भूखा होता है तो इसके कूबड़ का साइज कम हो जाता है और जब यह अपना पूरा भोजन कर लेता है तो कूबड़ फिर अपने वास्तविक आकार में आ जाता है। ऊंट का विशेष गुण यह है कि यह बिना पानी के दो सप्ताह तक रह सकता है। तो फिर यह अपनी पानी की आवश्यकता कैसे पूरी करता है?

क. जब यह पानी पीता है तब एक ही घूंट में 50 लीटर पानी पी जाता है अर्थात् तीन बाल्टी पानी एक लम्बी घूंट में।

ख. यह पानी किसी विशेष जगह या अंग में ही इकट्ठा नहीं होता बल्कि शरीर के सारे उत्तकों में समान रूप से वितरित हो जाता है

ग. यह अपने शरीर से बहुत कम पानी उत्सर्जित करता है। जब पानी की कमी होती है तो यह पूरे दिन में आधा लीटर मूत्र

ही करता है। यह मात्रा सामान्य स्थिति से 10-12 गुना कम है।

घ. इसके गोबर में भी गधे अथवा गाय के गोबर की अपेक्षा कम पानी होता है।

ङ. इसे पसीना भी बहुत कम आता है और इसकी साँस लेने की लय भी हमेशा धीमी होती है। यह हमेशा याद रखें जब यह लय अधिक होती है तब श्वसन में नमी भी अधिक होती है।

च. ऊंट की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह बाहर के वातावरण से अपने शरीर के ताप को सन्तुलित कर लेता है। इसलिए पसीना या किसी अन्य विधि से पानी की हानि कम होती है। हमें पसीना अधिक आता है इसलिए मरुस्थल में हमारे शरीर में पानी की कमी हो जाएगी क्योंकि हमारे शरीर का ताप 37° C (सेल्सियस) है जबकि बाहर का ताप 45° C (सेल्सियस) तक हो जाता है। ऊंट अपने शरीर का ताप 41° C (सेल्सियस) से 42° C (सेल्सियस) तक बढ़ा सकता है।

मरुस्थल में उगने वाले पौधों में भी अपने वातावरण के प्रति अनुकूलन होता है। इसका एक उत्तम उदाहरण है नागफनी। इसकी पत्तियाँ शल्कमय अथवा कांटेदार हो जाती है। इससे पत्ती की सतह से वाष्पोत्सर्जन नहीं हो पाता है। इन पौधों में रन्ध्र गर्त में होते हैं। इस कारण वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है। पत्तियों तथा तनों की सतह पर एक मोटी परत होती है जिसे उपत्वचा (क्यूटिकल) कहते हैं।

कुछ मरुपौधों से पत्तियां झड़ जाती हैं जिसके कारण सतही क्षेत्रफल कम हो जाता है और पानी की हानि भी कम हो जाती है। यदि आप नागफनी को दबा कर देखें तो आपको यह स्पंजी तथा गूदेदार लगेगी। ये विशेषताएं पानी को संचित करने में सहायता करती हैं।

मरुद्‌भिदी पौधों में पानी की कमी से निपटने के लिए अन्य अनुकूलन यह है कि ये बीज या जड़ के रूप में प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं। वर्षा आने पर यह पुनः अंकुरित हो जाते हैं।

मरुस्थल में पाए जाने वाले जन्तु भी ताप तथा पानी की कमी का सामना करने के लिए अपने आप को अनुकूलित करते हैं। मरुस्थली चूहे तथा सांप मिट्टी में सुरंग या बिल बना कर उनमें रहते हैं। गरम रेत के नीचे बने बिलों में नमी रहती है और वे ठंडे होते हैं। रात के समय जब रेत ठंडी हो जाती है तो ये अपने बिलों से बाहर निकल कर सक्रिय हो जाते हैं।

जीवों में अन्य पर्यावरण में भी अनुकूलन होता है। आप को पहले बताया जा चुका है कि भारत की भैंस वास्तव में कच्छ (दलदली) क्षेत्रों का पशु है। जब इसे बहुत अधिक गर्मी लगती है तब यह अपने पसीने से शरीर को ठंडा नहीं कर सकती क्योंकि इसमें स्वेद ग्रन्थियां दक्ष नहीं होती, इसलिए यह पानी तथा दलदल में रेलती है। राइनोसिरस तथा हिपोपोटेमस भी इसी प्रकार के अन्य उदाहरण हैं।

आपने पढ़ा है कि ऊंट अपने शरीर के ताप को किस प्रकार बाहरी गर्मी से समायोजित करता है। लेकिन मनुष्य वातावरण के अनुसार अपने शरीर का ताप नहीं बदल सकता। लेकिन कुछ बाहयष्मी जन्तु तथा कीट अपने आस-पास के वातावरण से गर्मी (ऊष्मा) लेकर अपने शरीर के ताप को बढ़ा सकते हैं। ऐसे जन्तुओं को

असमतापी कहते हैं और वे गर्मियों अथवा धूप वाले दिनों में अधिक सक्रिय होते हैं। इनके कुछ उदाहरण छिपकली, सांप, तथा मच्छर हैं।

ध्रुवीय क्षेत्र की बर्फीली ठंड में अन्य प्रकार के अनुकूलन देखे जा सकते हैं। यहां पर पाए जाने वाले जन्तुओं का रंग प्रायः सफेद अथवा हल्का होता है। यह रंग उनके छद्मावरण तथा गर्मी को नियमित करने में सहायता करता है। यहां के जन्तु गर्मी तथा पतझड़ में बहुत खाते हैं और वसा के रूप में ऊर्जा को एकत्र कर लेते हैं। कड़ी सर्दी में कुछ माहों तक ये सोए रहते हैं अथवा शीतवास करते हैं। शीतवास में इनकी उपापचय क्रिया बहुत ही कम हो जाती है। यहां तक कि इन ठण्डे बर्फ से ढके हुए स्थानों में पाए जाने वाले पौधों की भी ऊंचाई कम होती है। ये महीनों तक प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं। इनकी पतली अथवा कांटेदार पत्तियाँ होती हैं जिन्हें ये जल्दी-जल्दी गिरा देते हैं। प्रायः इन क्षेत्रों में वृक्ष नहीं मिलते क्योंकि वे इतनी ठण्ड में जीवित नहीं रह पाते हैं।

15.9 अनुकूलन कैसे होता है?

यह अनुकूलन कैसे होता है? जीव एकदम यह निर्णय नहीं ले पाते हैं कि वह अपने शरीर या जैविक गुणों को वातावरण के साथ बदल सकें। किसी स्पीशीज की बहुत बड़ी जनसंख्या में शायद कोई एक ऐसा जीव होगा जो दूसरों से कुछ भिन्न होगा। यह जीव अन्य जीवों की अपेक्षा वातावरण की परिस्थितियों को अच्छी तरह सहन करने में समर्थ हो सकता है। कुछ कीटों के उदाहरण लें। जब कोई कीटनाशक जैसे डी.डी.टी. डालते हैं तो बहुत सारे कीट मर जाते हैं। कीटों की उस बड़ी जनसंख्या में कुछ ऐसे भी कीट होंगे जिन पर डी.डी.टी. का कोई प्रभाव नहीं होगा। ये कीट वृद्धि करते हैं और इनमें प्रजनन होता है। यदि इस प्रकार प्रतिरोधक कीट प्रजनन करें तो शीघ्र ही उस क्षेत्र में प्रतिरोधक कीटों की जनसंख्या बढ़ जाएगी। इस नई संतति पर डी.डी.टी. जैसे कीटनाशक का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसे हम वातावरण से अनुकूलित होना कहते हैं। बहुत से कीट जन्म से ही वातावरण के ताप से अनुकूलित होते हैं, परन्तु पशु तथा मनुष्यों में इस प्रकार का अनुकूलन नहीं होता है। यदि कड़ी ठण्ड में कपड़े पहनाकर या ढंक कर इनका बचाव न किया जाए तो यह जीवित नहीं रह पायेंगे। कीट समुद्र में नहीं रह पाते हैं इनका शरीर लवणीय जल सहन नहीं कर सकता।

हमने ऊपर उन जीवों का वर्णन किया है जो अपने वासस्थान से अनुकूलित थे। ऊपर दी गई जानकारी अनुकूलन के सफल उदाहरण हैं। हमने अभी तक असफलता के विषय में कुछ नहीं कहा है। डोडो एक पक्षी था जो मोरीशिस और तटीय अफ्रीका के टापुओं में रहता था परन्तु अब वह लुप्त हो गया है। जबकि ऑस्ट्रिच, मुर्गी तथा इमु जैसे पक्षी जीवित हैं तथा अच्छी तरह से फल-फूल रहे हैं। डोडो ऐसा क्यों नहीं कर सका?

ऊपर का उदाहरण इसलिए दिया गया है कि आप यह न सोचें कि जीव अपने आप को वातावरण के अनुकूल ढालने के लिए अपने में परिवर्तन करने का फैसला स्वयं कर लेते हैं। जीव ऐसा नहीं करते और न ही वे ऐसा कर सकते हैं। जीवों में स्थायी परिवर्तन आनुवांशिक या आनुवांशिक विधियों से होते हैं। अन्यथा परिवर्तन एक संतति से दूसरे संतति में नहीं आ पाते हैं। यदि हम चिकित्सा पद्धति से घोड़े की गर्दन को

लम्बी कर दें तो यह लंबी गर्दन उसकी संततियों में देखने को नहीं मिलेगी। वंशागत परिवर्तन के लिए जीव के गुण सूत्रों में परिवर्तन होना चाहिए। इसी प्रकार ऊँट की पानी के बिना रहने की विशेषता भी आनुवंशिक है और ये विशेषता पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। यह उपार्जित विशेषता नहीं है, यदि ऐसा होता तो ये अगली संतति में नहीं पाया जा सकता है। केवल जो गुण सूत्रों में होता है वही अगली संतति में जाता है।

मरुस्थल में जानवरों की बहुत बड़ी जनसंख्या के विषय में सोचें। इन सब को जीवित रहना है जिसके लिए उन्हें भोजन प्राप्त करना है, प्रजनन करना और फलना फूलना है। इन सब प्रक्रियाओं को करने के लिए उन्हें वातावरण से अनुकूलित होना पड़ता है। इस वातावरण में उन जीवों के जीवित रहने की संभावना अधिक है जो पानी के बिना कुछ दिन रह सकते हैं बजाय उन जीवों के जिन्हें प्रतिदिन पानी की आवश्यकता होती है, बाद वाले जीव मरुस्थल में कुछ दिनों में मर जायेंगे। जो जीव कुछ दिन मरुस्थल में बिना पानी के रह सकते हैं उनके इन मरुस्थल में रहने के अधिक अवसर हैं। लेकिन कुछ पीढ़ियों के बाद क्या होगा?

जो जीव इस वातावरण के अनुकूल नहीं हैं उनकी जनसंख्या कम हो जाएगी और जो अनुकूल हो गए हैं उनकी जनसंख्या बढ़ जाएगी। इस प्रक्रम को प्राकृतिक वरण कहते हैं। क्योंकि इस वातावरण से तालमेल रखने वाले जीवों को कुछ वरणात्मक लाभ थे जिससे उनकी जनसंख्या धीरे- धीरे प्रभावी होती गयी। योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धान्त इसी संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है। जो जीव अपने को वातावरण के अनुसार बदल लेते हैं वे बच जाते हैं और शेष नष्ट हो जाते हैं। स्पीशीज और जनसंख्या के प्राकृतिक वरण का प्रक्रम कुछ ही वर्षों में नहीं हुआ बल्कि कई हजार वर्षों में स्थापित हुआ है।

इसीलिए ऊंट मरुस्थल में बच गया है और उसने प्रजनन किया परन्तु मेंढक और ध्रुवी भालू मरुस्थल में नहीं बच पाए। ऊंट मरुस्थल के वातावरण में अच्छी तरह रह सकता है और अब यह इसका वास-स्थान बन गया है। ऊंट ने मरुस्थल में रहने या वहां अपना परिवार बढ़ाने का फैसला नहीं किया था। मरुस्थल में भौतिक वातावरण तथा ऊंट के जैविक अक्षर्यानिधि में अच्छा तालमेल रहा है। हमारा जीव विज्ञान में अनुकूलन शब्द का उपयोग करने का यही अर्थ है।

15.10 मनुष्य अपने वासस्थान को अपने अनुकूल बनाता है

जीव अपने वास-स्थान की परिस्थितियों में अस्थाई परिवर्तन करते हैं। जलकुम्भी की अत्याधिक वृद्धि तालाब के पोषकों को नष्ट कर देती है, इससे दूसरे जीवों की वृद्धि सुचारू रूप से नहीं हो पाती है।

कुछ जानवरों जैसे बाघ की पूर्व प्रभाविकता जंगल में रहने वाले अन्य जानवरों जैसे हिरण, जेब्रा को अन्य सुरक्षित स्थानों पर प्रजनन के लिए विवश कर देती है।

मनुष्य सफलता पूर्वक विभिन्न वास स्थानों में रह सकता है। मनुष्य ने समुद्रों तथा अन्टारटिक जैसे स्थानों का दोहन किया है। उन्होंने ऐसे

वातावरण का निर्माण किया है जो उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल हो। इस प्रक्रम से वातावरण तथा वास-स्थानों मे बहुत तीव्र प्रत्यावर्तन हुए हैं।

आप मनुष्य के द्वारा वास स्थानों में लाये गए परिवर्तनों की एक सूची बनाएं। आपको पता लगेगा कि कृषि योग्य भूमि का उपयोग अन्य कार्यों जैसे कृषि, नागरीकरण तथा कारखाने लगाने में किया गया है। क्या तुम सोच सकते हो कि इन परिवर्तनों से स्वस्थ वातावरण का निर्माण भी होगा। मान लो कि विकास कार्य के लिए वनों को काट दिया जाए तो क्या आप बता सकते हैं कि इसका वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या इससे मिट्टी, पक्षियों तथा जानवरों पर कोई प्रभाव पड़ेगा? क्या इससे अधिक बाढ़ आ जाएगी?

क्रियाकलाप—4

एक बरतन लो। इसे 3/4 भाग पानी से भर दो। इसमें रेत डालें। आप देखेंगे कि पानी की सतह ऊपर उठ जाएगी। थोड़ा और रेत डालें, पानी बरतन से बाहर निकलना शुरू हो जाएगा। ऐसा नदी में भी होता है, जब अधिक मिट्टी बहकर नदी में आ जाती है। क्या इस प्रक्रम में तथा बाढ़ में कुछ समानता है? क्या जलाशय में अधिक मिट्टी या रेत के एकत्र होने पर बांध को कुछ हानि पहुंच सकती है?

प्रश्नावली

1. वासस्थान की परिभाषा लिखिए। आप इसे वातावरण से कैसे भिन्न समझते हैं?
2. ऐसी भौतिक अवस्थाओं की सूची बनाओ जो किसी वासस्थान की प्रकृति को निर्धारित करती हैं।
3. उदाहरण देकर किसी वासस्थान में स्पीशीज की परस्पर निर्भरता को समझाएं।
4. मनुष्य के दो परजीवियों के नाम बताइए। उनके वाहकों के नाम भी लिखें।
5. अनुकूलन क्या है? यह कैसे होता है?
6. तालाब या झील में पाए जाने वाले कुछ जलीय पौधों के नाम बताइए?
7. जलीय पौधे तथा जानवर क्षय होने से कैसे बच सकते हैं?
8. मछली पानी में कैसे गति करती है? उसे ऑक्सीजन लेने के लिए क्या करना पड़ता है?
9. आप जलीय पौधों में उत्प्लावकता की परिस्थितियों की कैसे व्याख्या करेंगे।
10. स्थलीय जीवों को प्रभावित करने वाले मुख्य भौतिक कारक कौन-कौन से हैं?
11. मरुस्थल में पाए जाने वाले पौधे पानी की हानि को कैसे रोकते हैं?
12. बिलकारी आदतें मरूस्थलीय जन्तुओं को पानी की कमी में जीवित रखने में किस प्रकार सहायक हैं?

13. मरुस्थल में रहने के लिए ऊंट की अनुकूलता का वर्णन करिए।
14. गायों की संख्या नमी वाले वासस्थानों की अपेक्षा शुष्क तथा गरम वासस्थानों में अधिक होती है। इसके कारण बताइए।
15. गिरगिट की अनुकूलता की व्याख्या करिए।
16. ऐसे तरीकों की एक सूची बनाइए जो जीवों को हिमांक से कम ताप पर जीवित रखने में सहायता करते हैं।
17. जैविक दृष्टि से अनुकूलता के लिए जिन परिवर्तनों की आवश्यकता होती है उन्हें विस्तार से लिखें।
18. मनुष्य द्वारा वातावरण में हेर-फेर करने से अन्य जीवों के वास-स्थानों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
19. वास-स्थान को उचित रूप से उपयोग करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

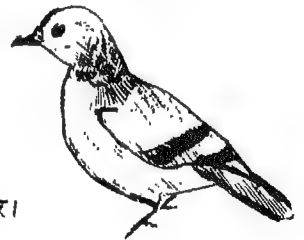
जीवन पद्धति : पक्षी का जीवन

भूमिका

हम अपने चारों ओर विभिन्न प्रकार के जीव, जैसे केंचुआ तथा कीट, मछली तथा मेंढक, पक्षी, गिलहरी तथा बन्दर तथा विभिन्न प्रकार के पौधों को देखते हैं। इस विविधता का उद्गम क्या है? ये अपना अस्तित्व कैसे बनाए हुए हैं? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो हमारे सामने प्रायः उठते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर हमें स्वयं खोजने चाहिए। यह अध्याय इसी उद्देश्य से लिखा गया है जिससे आपको अवलोकन के आधार पर अपने प्रश्नों का उत्तर स्वयं खोजने में सहायता मिले।

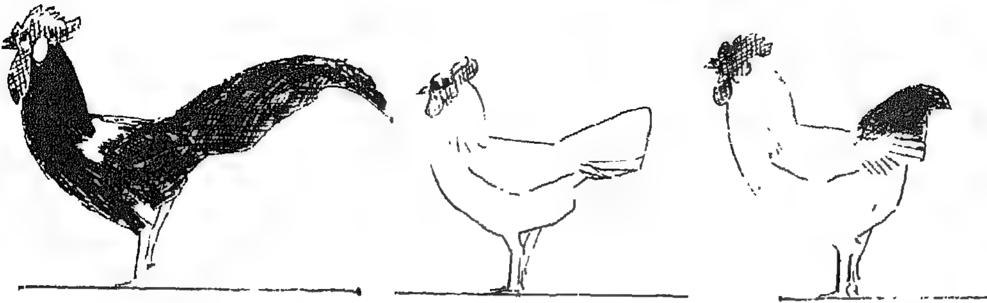
इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने पक्षियों का उदाहरण लिया है। इसका कारण यह है कि पक्षी सजीवता के साथ-साथ अपनी भव्य उड़ान, सुन्दर रंगों और मधुर स्वरों से हमारे मन को आकर्षित करते रहते हैं। भारत में प्रत्येक स्थान यहां तक कि बम्बई जैसे शहर में आप पक्षियों को अपना स्वाभाविक जीवन जीते हुए देख सकते हैं। उनकी शारीरिक रचना जैसे दो पैरों तथा पंखों के कारण उनको पहचानने में कोई भी गलती नहीं कर सकता। शहर में भी आप विभिन्न प्रकार के पक्षी देखते हैं पर उनकी संख्या प्राकृतिक वासस्थानों जैसे वृक्षों से घिरे स्थानों पर अधिक होती है।

आइए इस अध्याय का आरम्भ पक्षी कितने प्रकार के होते हैं, से करें। यहां पर मुख्य शब्द है प्रकार। घरेलू कबूतरों या चूज़ों के झुण्ड को देखने का प्रयत्न कीजिए। कबूतर तथा चूज़े विभिन्न रंगों में दिखाई देंगे (चित्र 16.1)। उदाहरण-के लिए चित्र 16.2 को देखिए इस चित्र में **रैड रोडे आइलैंड, व्हाइट लैग हार्न, ब्लैक मिनोर्का** तथा **ब्राउन चिकन** (भूरा चूजा) दिखाया गया है।



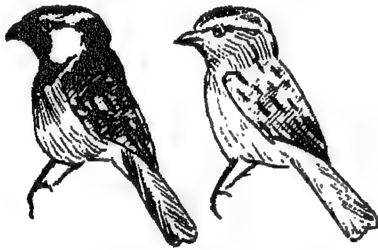
चित्र 16.1 *कबूतर।*

हम इन्हें विभिन्न प्रकार का मान सकते हैं। इसी प्रकार चित्र 16.3 में दिखाई गई गौरेया को देखिये। आपको दो प्रकार की गौरेया दिखाई देंगी। इनमें से एक की पीठ लाल भूरे से रंग की,



चित्र 16.2 चूजा। रैड रोडे आई लैंड मुर्गा, व्हाइट लोगहार्न मुर्गी, तथा ब्लैक मिनोर्का मुर्गा।

सिर स्लेटी रंग का तथा दाढ़ी अर्थात् ठोडी से वक्ष तक का भाग् काले रंग का है, जबकि दूसरी के शरीर का सारा रंग हल्का भूरा सा है। वास्तव में पहली वाली गौरेया नर है तथा दूसरी मादा। आप इन्हें इनके घोंसलों के पास संभोग करते हुए देख सकते हैं।



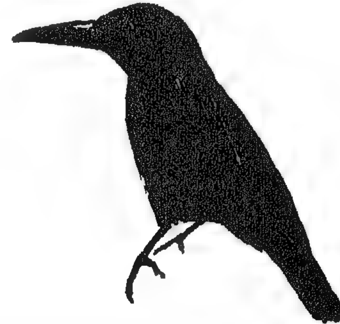
चित्र 16.3 गौरेया। बाईं ओर नर, दाईं ओर मादा।

कौवे भी दो प्रकार के होते हैं। एक कौवे का रंग बिल्कुल काला होता है, (चित्र 16.4) दूसरा कौवा छोटा होता है और उसकी गर्दन स्लेटी रंग की होती है (चित्र 16.5)। बहुत से लोग सोचते हैं कि इनमें से पहला नर है तथा दूसरा मादा। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। ये चूज़ों तथा नर-मादा गौरेया के विभिन्न प्रकारों से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि कौवों के यह दोनों प्रकार आपस में संकरण नहीं कर सकते हैं। ये अलग अलग स्पीशीज के सदस्य हैं। स्पीशीज प्राकृतिक परिस्थितियों में संकरण करने वाले जीवों के एक



चित्र 16.4 सामान्य घरेलू कौवा जिसकी गर्दन स्लेटी रंग की है।

समूह को कह सकते हैं। इसीलिए प्रत्येक स्पीशीज पृथ्वी पर लैंगिक जनन करने वाले जीवों में जीवन



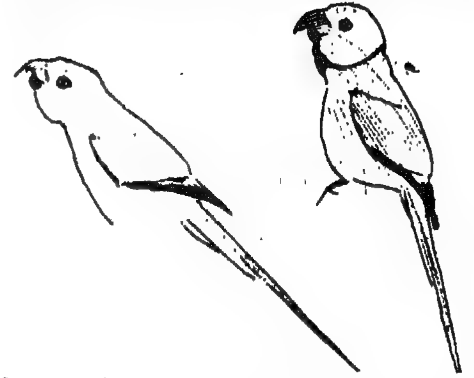
चित्र 16.5 जंगली कौवा यह बिलकुल काले रंग का है और घरेलू कौवे से लम्बा।

की विविधता की एक प्राकृतिक इकाई है। आइए हम अपना ध्यान पक्षी वर्ग की स्पीशीज पर केन्द्रित करें और स्पीशीज स्तर पर विविधताएं देखें।

संसार में पक्षियों की लगभग 8,600 स्पीशीज हैं जिसमें से लगभग 1200 स्पीशीज भारत में पाई जाती हैं। जब आप पक्षियों का अवलोकन करेंगे तब आपको दो स्पीशीज में अन्तर करना कठिन लग सकता है। वे दो अलग-अलग लिंग के हो सकते हैं, अथवा उसी स्पीशीज के बाल्य और वयस्क की अलग-अलग अवस्थाएं भी हो सकती हैं। लेकिन लगातार देखते रहने से कुछ समय बाद यह कठिनाई समाप्त हो जाएगी। प्रारम्भ में आप केवल इन पक्षियों के विभिन्न अंतरों को देखिये और उनके विशेष गुणों को लिखिए। उनका साइज, रंग, उनकी चोंच, टांगे, पूंछ तथा पंखों का माप तथा आकार, वे कहां पाए जाते हैं और क्या करते हैं आदि ही उनकी मुख्य विशेषतायें हैं।

आइये अब इस विषय में सोचें कि किसी आस पड़ोस में कितने प्रकार के पक्षी हैं और इन पक्षियों की संख्या इस क्षेत्र में इससे अधिक या कम क्यों नहीं है। इस प्रकार के वैज्ञानिक प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए हमें कुछ मानक विधि अपनानी चाहिए ताकि दूसरे विद्यार्थी भी हमारे अवलोकनों की पुनरावृत्ति कर सकें और देखें कि उत्तरों में समानता है या नहीं। चूंकि अवलोकनों की पुनरावृत्ति करना विज्ञान का एक प्रमुख अंग है। हम इस अध्याय के अन्त में प्रोजेक्ट्स के अन्तर्गत पक्षियों की विभिन्न स्पीशीज का अनुमान लगाने की एक मानक विधि की रूप रेखा बतायेंगे। इस विधि को रेखा खंड (line transect) कहते हैं और इस विधि में अवलोकनों की पुनरावृत्ति सुनिश्चित है। हमारा सुझाव यह है कि आप इस विधि को अपने अवलोकनों में उपयोग करें।

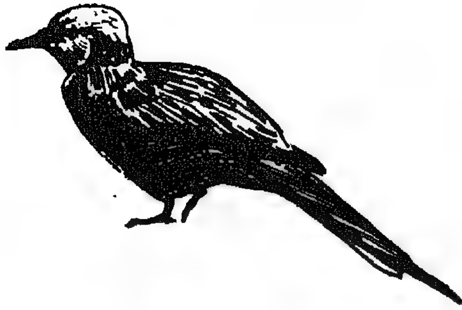
इस प्रकार के अवलोकनों को आप विभिन्न वास-स्थानों पर कर सकते हैं। कस्बों में जहां काफी खुला स्थान हो, बाग-बगीचों में तथा सड़क



चित्र 16.6 रोज रिंग्ड पैराकीट। इसकी चोंच शक्तिशाली तथा वक्र होती है।।

के किनारे लगे वृक्षों पर आपको बीस-पच्चीस स्पीशीज दिखाई दे सकती हैं। दूसरी ओर खुले रेतीले समुद्र के किनारे केवल 10-15 तक विभिन्न स्पीशीज देखी जा सकती हैं। सम्मिश्र वास स्थानों जैसे ताजा पानी के स्थानों जिसके चारों ओर धान के खेत तथा वृक्ष हों, पर आपको 30-35 स्पीशीज दिखाई पड़ सकती हैं। घने सदा बहार वनों में आपको 15-20 स्पीशीज ही दिखाई देंगी।

पक्षियों की किसी स्थान पर संख्या, स्पीशीज तथा उनके समुदाय की रचना को कौन निर्धारित करता है? पारिस्थितिक वैज्ञानिक पक्षियों के समुदाय को विभिन्न स्पीशीज का एक ऐसा समूह मानते हैं जिनमें प्रत्येक के जीने का तरीका थोड़ा भिन्न होता है। उदाहरण के लिए **रोजरिंग्ड पैराकीट** (चित्र 16.6) फलों को खाता है, और



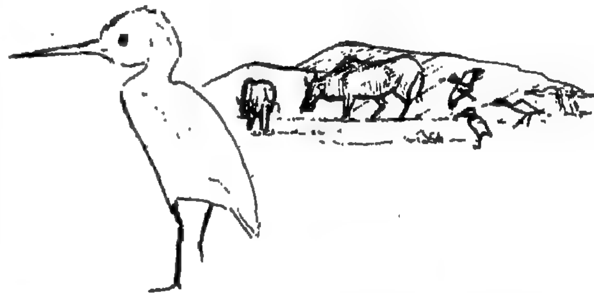
चित्र 16.7 चित्तीदार कबूतर।

प्रतिदिन झुण्ड बनाकर बहुत बड़े क्षेत्र में उड़ान भरता है। जबकि चित्तीदार बत्तख किसी सीमित क्षेत्र में (चित्र 16.7) छोटे-छोटे दानों को खाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों की जीवन विधि में काफी अन्तर है। ये दोनों ब्लैक ड्रोंगों (चित्र 16.8) से भी भिन्न होते हैं। ड्रोंगों वृक्ष से उड़कर हवा में उड़ते हुए कीट का पीछा करता है। ये स्पीशीज छोटे कस्बों तथा बाग-बगीचे वाले शहरों में पाये जाने वाले पक्षी समुदाय की सदस्य हैं यद्यपि इनमें से प्रत्येक अपने जीवन यापन के लिए अपनी भिन्न-भिन्न विशिष्टताओं तथा विभिन्न संसाधनों का उपयोग करती हैं। विभिन्न प्रकार के वास-स्थान जैसे घास के नम मैदान में विभिन्न प्रकार के पक्षी दिखाई देंगे। ऐसे स्थानों पर कैटल एग्रेट (चित्र 16.9) दिखाई दे सकता है जो चरती हुई भैसों के पीछे पीछे जाता है और उनके चलने से कुचली हुई घास से कीड़ों को पकड़ कर खाता है। पक्षियों के प्रत्येक समुदाय में विभिन्न प्रकार के पक्षियों को देखिये। उनके वास स्थान तथा रहने का ढंग भिन्न होते हुए भी वे किस प्रकार समुदाय में रहते हैं? इसे स्पीशीज का **पारिस्थितिक कर्मता** कहते हैं। कर्मता (Niche) समुदाय में पौधों तथा जन्तुओं का स्थान तथा कार्य बताता है। विभिन्न स्पीशीज की पारिस्थितिक कर्मता भिन्न भिन्न होती है।



चित्र 16.8 ब्लैक ड्रोंगों। इसकी लम्बी कांटेदार पूंछ।



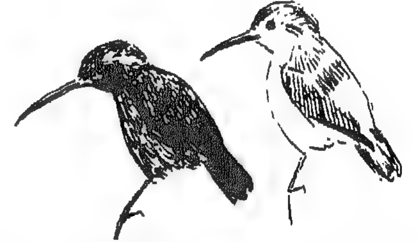
चित्र 16.9 कैटल एग्रेट जो चरती हुई भैसों के पीछे चलता है।

इससे पता लगता है कि विभिन्न प्रकार के समुदायों में स्पीशीज की संख्या कम अथवा अधिक क्यों होती है। वातावरण जितना सरलतम होगा उतना ही पारिस्थितिक कर्मता कम होगी तथा स्पीशीज की संख्या भी कम होगी। इसीलिए समुद्रों के रेतीले तटों पर 10-15

तक स्पीशीज होती हैं। इनमें से कुछ ही विभिन्न दूरियों पर रेत पर तथा कम उथले जल में भोजन की तलाश करती रहती हैं। यहां तक कि सदाबहार नमी वाले वनों में जहां वृक्ष वितान के रूप में हैं, वहां भी 15-20 तक ही स्पीशीज पाई जाती हैं जो कीट तथा फलों को भोजन के रूप में विभिन्न स्तरों पर लेती हैं। दूसरी ओर एक छोटे कस्बे में भी जिसके घरों के चारों ओर बाग हों विभिन्न वास-स्थान पाये जाते हैं। कस्बों की सड़कें तथा खेलने के मैदान, शुष्क पथरीले अथवा घास के मैदान वास-स्थान के रूप में हैं जहां पर झाड़ियां तथा वृक्ष कहीं-कहीं लगे रहते हैं। यहां पर कहीं-कहीं घनी झाड़ियों का समूह भी होता है इसलिए शहरों तथा कस्बों में 20-25 विभिन्न स्पीशीज पाई जा सकती हैं। जब आप पक्षियों को देखने के लिए बाहर जायें तो उनके वास-स्थानों के विषय में लिखिए और पक्षियों की स्पीशीज की संख्या तथा वास-स्थानों के सम्बन्धों को भी देखने का प्रयत्न करें।

आप पक्षियों का अवलोकन करते समय अन्य दिलचस्प क्रिया कलाप भी कर सकते हैं। इसमें आप पक्षी की शारीरिक रचना तथा व्यवहार की तुलना उसके रहन-सहन के तरीके से कीजिये। हमारा ऐसा विश्वास है कि विकास के इतिहास में पक्षी के शारीरिक रचना के वे गुण अथवा व्यवहार जो उसके जीवन के रहने के अनुकूल नहीं होंगे वे स्वयं लुप्त हो गये होंगे और ऐसे नये गुण उत्पन्न हुए होंगे जो कि उसके जीने के ढंग में सहायता कर सकें। इसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक पक्षी अपनी जीने की आवश्यकता के अनुकूल हो गया होगा। अब हम अपने देश के 26 सामान्य पक्षियों का वर्णन करेंगे। हमें विश्वास है कि आप भारत में कहीं न कहीं इन पक्षियों को अवश्य देख पायेंगे।

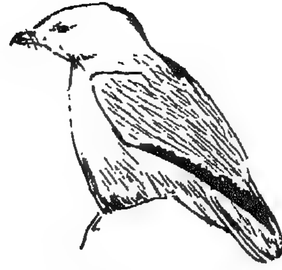
हमारे सबसे सामान्य पक्षियों में कौवे की दो स्पीशीज आती हैं। उनमें से एक बिलकुल काला, लंबा, जंगली कौवा (चित्र 16.5) है तथा दूसरा इसका सर्वतोमुखी घरेलू कौवा है (चित्र 16.4) जिसकी गर्दन स्लेटी रंग की है। कौवा एक मजेदार पक्षी है जो सब चीजें, जैसे फूलों का मकरन्द, फलों, दानों से लेकर कीटों तक, सभी पक्षियों के बच्चे तथा अण्डे एवं मरे हुए चूहे तक खा जाता है। उसकी चोंच को देखें। यह मजबूत सीधी तथा लंबी है लेकिन कोई विशिष्ट कार्य के लिए नहीं होती है। इसी चोंच के कारण ये विभिन्न प्रकार के भोजन को खा सकता है। इसकी चोंच की तुलना शकरखोरों (sun birds) की चोंच से करें।



चित्र 16.10 शकरखोरा : इसकी चोंच लम्बी, पतली तथा वक्र होती है।

शकरखोरे (चित्र 16.10) छोटे, चुस्त पक्षी होते हैं जिनकी चोंच लंबी, पतली तथा मुड़ी होती है। आप उन्हें प्रायः मकरन्द चूसते हुए बागों में देख सकते हैं। ये मकरन्द ऐसे फूलों से चूसते हैं, जिनका फूल नली के आकार का होता है जिसमें ये अपनी चोंच आसानी से डाल सकते हैं। हमारा अन्य मनपसन्द पंक्षी है तोता या रोजरिंग्ड पैराकीट (चित्र 16.6)। इसकी चोंच बहुत

मजबूत तथा मुड़ी होती है। इसकी चोंच हरे-हरे अमरूदों के गूदे में घुस जाती है जिनसे यह अपना भोजन प्राप्त करता है। मजबूत मुड़ी हुई चोंच माँसाहारी पक्षियों की भी होती है जिसे वे चूहे जैसे जीवों की सख्त खाल की चीर-फाड़ करने में उपयोग करते हैं। माँसाहारियों में हमारा सामान्य पक्षी चील है। उनमें से एक काले से भूरे रंग की परिहा चील है जिसकी पूँछ कटावदार होती है (चित्र 16.11) तथा दूसरी है लाल एवं सफेद ब्राहमणी चील (चित्र 16.12)।



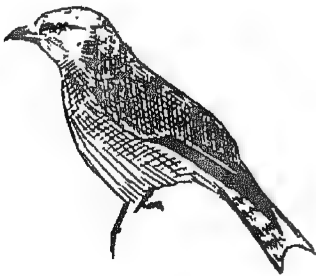
चित्र 16.12 ब्राहमणी चील।

छोटा चित्तीदार उल्लू तथा बड़ा बार्न उल्लू दो अन्य माँसाहारी पक्षी हैं जो रात में घूमते हैं। इनकी चोंच भी मजबूत तथा मुड़ी हुई होती है (चित्र 16.14)। इन निशाचर पक्षियों में एक विचित्र गुण यह है कि इनकी बड़ी-बड़ी आँखें चपटे चेहरे पर लगी रहती हैं जिससे कि वे मध्यम प्रकाश में अपने शिकार पर ठीक निशाना बना लेते हैं।

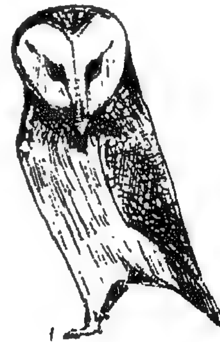


चित्र 16.13 चित्तीदार उल्लू इसका माप छोटा होता है तथा इसके शरीर पर चित्तियां होती हैं।

आइए अब दूसरी विशेषता पंखों के बारे में विचार करें। अपने-अपने जीवन के तरीकों के



चित्र 16.11 काली तथा भूरे रंग की परिहा चील। इसकी पूंछ होती है।



चित्र 16.14 बार्न उल्लू इसकी बड़ी-बड़ी आंखें और चपटे चेहरे को देखें।

अनुसार पक्षी विभिन्न ढंगों से उड़ते हैं। कापर स्मिथ (चित्र 16.15) एक छोटा पक्षी है जो हमारे बागों में हरे फलों को खाता रहता है। इसका नाम कुक-कुक की लगातार आवाज के कारण पड़ा है जो ठठेरे के कार्य करने के दौरान उत्पन्न होती है। फल खाने वाले इस पक्षी को बहुत कम उड़ने की आवश्यकता होती है वह भी बहुत धीरे-धीरे। क्योंकि यह एक वृक्ष या झाड़ी से दूसरे वृक्ष या झाड़ी तक ही जाता है। इसीलिए इसको तेज उड़ने की अथवा अपने पंखों द्वारा काफी समय तक सर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। इसके पंख छोटे तथा चौड़े होते हैं जो इस प्रकार की उड़ान के लिए उपयुक्त हैं। बुलबुल (चित्र 16.16) की भी आदत ऐसी ही होती है जो मुख्यतः सरस फल खाती है। बैब्लर का भी चलने का तरीका (चित्र 16.17) बुलबुल तथा कापर स्मिथ की तरह होता है। बैब्लर कीट भक्षी होता है, ये झुण्ड बनाकर खाता है तथा किसी छोटे से क्षेत्र में धीरे-धीरे एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी तक जाता है। इसे उड़ने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। इसके पंख भी छोटे तथा चौड़े

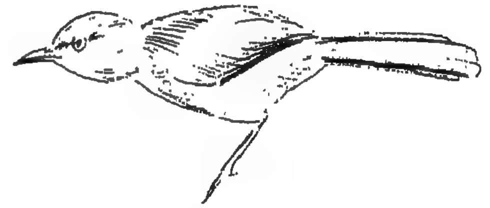


चित्र 16.15 छोटे तथा चौड़े पंखों सहित कॉपर स्मिथ।

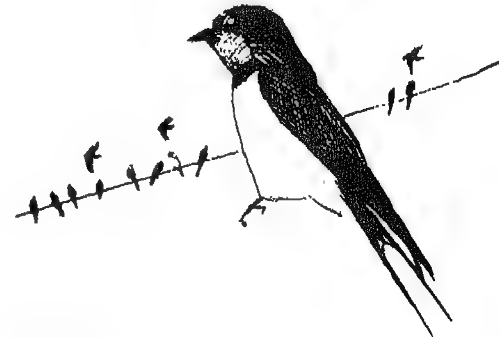
होते हैं। अबाबील (चित्र 16.18) तथा बतासी (चित्र 16.19) में यह गुण इनके बिल्कुल विपरीत हैं। ये पक्षी सारा दिन उड़ते हैं क्योंकि ये हवा में उड़ने वाले कीटों को अपना भोजन बनाते हैं।



चित्र 16.16 बुलबुल।

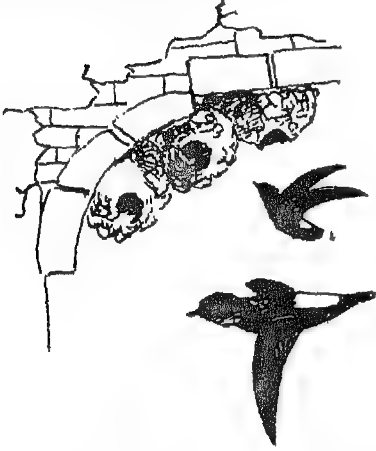


चित्र 16.17 बैब्लर।



चित्र 16.18 अबाबील जो उड़ते हुए कीटों को खाता है।

इसलिए इन्हें कीटों को पकड़ने के लिए तेज उड़ना पड़ता है। इनके पंख लम्बे, पतले तथा थोड़े मुड़े हुए होते हैं। ऐसे पंख लंबे समय तक तेज उड़ने के लिए उपयुक्त होते हैं।



चित्र 16.19 बतासी : लम्बे तथा वक्र पंख जो बतासी तथा अबाबील को तेज उड़ने में सहायता देते हैं।

आइए अब हम पूँछ के विषय में विचार करें। पूँछ संतुलन बनाये रखने वाला अंग है। उड़ान के समय यह पक्षी को मुड़ने में भी सहायता करती है। उड़ान के समय शीघ्रता से मुड़ने वाला पक्षी ब्लैक ड्रोंगों है (चित्र 16.8) जो उड़ते हुये कीटों जैसे ड्रेगन फलाई को पकड़ता है। लम्बी कांटेदार पूँछ इसकी मुख्य विशेषता है। मधुकराश (चित्र 16.20) एक छोटा हरे रंग का पक्षी है जिसकी भोजन सम्बन्धित आदतें ब्लैक ड्रोंगों के समान हैं। इसकी एक लम्बी पूँछ तथा दो लम्बे पर होते हैं। जब यह मधुमक्खियों एवं अन्य कीटों को पकड़ने का प्रयत्न करता है उस



चित्र 16.20 मधुकराश : इसकी लम्बी पूंछ तथा दो बड़े पंखों को देखो।



चित्र 16.21 सफेद छाती वाला किलकिला। यह बड़ी तेज गति से चल सकता है।



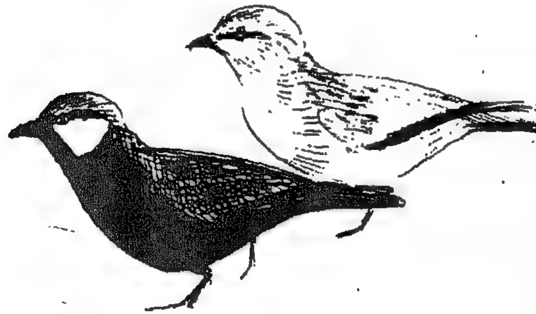
चित्र 16.22 सामान्य मोर। मोर की तरह मोरनी में पूंछ नहीं होती।

समय इसकी कला बाजियां देखने योग्य होती हैं। सफेद वक्ष वाला किलकिला (किंगफिशर) (चित्र

16.21) धरती पर ही कीटों को ढूंढता है और सीधे ही उन पर झपट्टा मारता है। वास्तव में इसकी पूंछ बहुत छोटी तथा मोटी होती है। मोर (चित्र 16.22) की पूँछ एक अपवाद है और वह उसे उड़ने में कोई सहायता नहीं करती है।

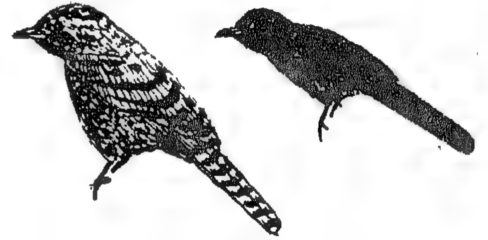
टांगों तथा पंजों को भी देखिये। शिकारी पक्षियों जैसें चील तथा उल्लू के पंजे बड़े तेज होते हैं लेकिन टांगें मध्यम माप की होती हैं। लम्बी टांगें ऐसे पक्षियों में होती हैं जो उथले पानी में रहने वाले कीटों तथा मछलियों पर निर्भर रहते हैं। सामान्य केटल एग्रेट (चित्र 16.9) की ऐसी ही लंबी टांगें होती हैं।

पक्षियों के रंग को भी देखो। बहुत से पक्षी अपने रंग का उपयोग अपने वातावरण से घुल-मिल जाने के लिए करते हैं। ऐसे पक्षी खुले बंजर स्थानों पर जहाँ छिपने के लिए और कोई स्थान नहीं होता, पाए जाते हैं। **ऐशी-क्राउन्ड फिंचलार्क** (चित्र 16.23) ऐसे ही स्थानों पर पाया जाता है, जहां पर उसका भूरा तथा काला रंग वहां की मिट्टी, चट्टान तथा घास से घुल-मिल जाने के लिए उपयुक्त होता है।



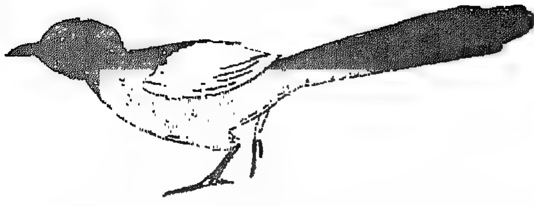
चित्र 16.23 ऐशी-क्राउंड फिन्च लार्क जो वातावरण में घुल मिल जाती हैं।

केवल शरीर की रचना ही नहीं अपितु पक्षी का व्यवहार भी महत्वपूर्ण है, जो उनको ऐसा जीवन यापन करने के अनुकूल बनाता है। इनमें भी बहुत सी मन लुभावनी विविधताएँ होती हैं। संकरण (जनन) करना पक्षियों के जीवन का एक मुख्य अंग है। उनमें से सबसे अद्‌भुत हैं घोंसलों पर परजीवी होना। ये ऐसे पक्षी हैं जो दूसरे पक्षियों द्वारा बनाए गए घोंसलों में अपने अंडे देते है और उन्हें वहीं बढ़ने देते हैं। इसका मुख्य उदाहरण है कोयल (चित्र 16.24) जो कौवे के घोसलों में अंडे देती है। इसका कारण यह है कि मादा कोयल कौवे की शक्ल से मिलती है।



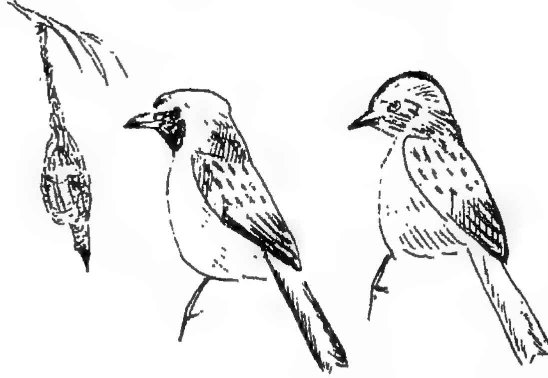
चित्र 16.24 कोयल। बाईं ओर नर है।

हमारा सुझाव है कि आप ध्यान से कौवे तथा कोयल के बीच पारस्परिक क्रियाओं को देखें और पता लगाने का प्रयत्न करें कि कोयल किस प्रकार कोवे के घोसले में अण्डे देने के लिए प्रबन्ध करती है। कोयल के सभी सम्बन्धी घोंसले के परजीवी नहीं होते। इनमें से सबसे मुख्य पक्षी जो अपने चूज़े का स्वयं लालन-पालन करता है, वह हमारे बागों के आस-पास ही पाया जाता है। यह पक्षी है कौकल। यह काले रंग का होता है जिसके पंख भूरे से लाल रंग के होते हैं और पूँछ लम्बी होती है (चित्र 16.25)।



चित्र 16.25 कोकल : इसके पंख भूरे तथा पूंछ लम्बी होती है।

अपने चूज़ों का स्वय लालन-पालन करने वाले पक्षी ऐसा करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रबन्ध करते हैं। अधिकांश पक्षी जोड़े बनाकर अपने चूज़ों को पालते हैं। चूंकि चूज़ों की वृद्धि दर बहुत अधिक होती है। इसका वजन कुछ ही सप्ताह में वयस्क के भार के बराबर हो जाता है और यही कारण है कि दोनों माता-पिता इस दौरान बहुत कार्यशील रहते हैं। गौरैया अथवा ब्लूराक कबूतर को देखें जो प्रायः घरों में घोंसला बनाते हैं। देखिये, ये अपने बच्चों का लालन पालन करने में कितने क्रियाशील रहते हैं। कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जिन्होंने इस समस्या का समाधान कर लिया है और वे चूज़ों का लालन-पालन विशिष्ट संरक्षित नलियों में करते हैं। उनकी वृद्धि दर अपेक्षाकृत कम होती है। इसलिए उनको अधिक भोजन देने की आवश्यकता नहीं होती है। इसका मुख्य उदाहरण बया है (चित्र 16.26)। बया में नर कई मादाओं से संभोग करता है। यह बहुत बड़ा घोंसला बनाने का उत्तरदायित्व लेता है। लेकिन चूज़ों को खाना खिलाने का काम मादाओं पर छोड़ देता है। यदि आप खोजें तो बया के घोंसले कीकर अथवा खजूर के पेड़ों पर बहुत संख्या में लटके हुए दिखाई देंगे। इन पक्षियों को सम्भोग करते देखना बहुत ही अच्छा लगता है। इनकी विशिष्ट आवाज सीटी के रूप में होती है, जो नर द्वारा सम्भोग के लिए दी जाती है। आपको मादा को अपने घोंसलों में बुलाने के लिए नर बया द्वारा प्रदर्शित व्यवहार को भी देखना चाहिए।



चित्र 16.26 बया पक्षी। बया के बुने हुए घोंसले को देखो।

अण्डे देने के लिए विभिन्न पक्षियों द्वारा विभिन्न प्रकार के घोंसले बनाये जाते हैं। सामान्य पक्षियों के घोंसलों को आप बड़ी आसानी से देख सकते हो। लेपविंग तथा बतख अपने घोंसले जमीन पर ही बनाते हैं। अन्य पक्षी जैसे मैना (चित्र 16.27), तोता (चित्र 16.6), किलकिला (चित्र 16.21) तथा कठफोड़वा वृक्षों में पाये जाने वाले प्राकृतिक गुहिकाओं में घोंसले बनाते हैं। बतासी तथा अबाबील (चित्र 16.18, 16.19) चट्टानों पर बहुत सारी मिट्टी इकट्ठी करके घोंसला बनाते हैं। बया (चित्र 16.26) जो रेशों से बहुत बड़ा लटकने वाला घोंसला बनाते हैं तथा दर्जिन पक्षी जो पत्तों को सिलकर घोंसला बनाते हैं कुछ ऐसे सामान्य उदाहरण हैं जो घोंसला बनाने की कारीगरी और दक्षता दिखाते हैं।

आप मुर्गी पालन केन्द्रों में अण्डे से चूजा निकलने की प्रक्रिया को आसानी से देख सकते हैं। आप देखेंगे कि नवजात चूज़ों पर छोटे-छोटे पंख होते हैं, उनकी आंखे खुली होती हैं। वह तुरन्त चलना और स्वयं खाना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे पक्षियों को **नीडीफूगस** (Nidifugus) कहते हैं जिसका अर्थ होता है "घोंसले से भागना"। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि अंडजोत्पत्ति के समय ये पक्षी पूर्ण विकसित होते हैं और घोंसलों को तुरन्त छोड़कर अपना ध्यान स्वयं रखते हैं। इसके विपरीत कुछ अन्य पक्षियों के नवजात चूज़े पर पंख नहीं होते हैं। उनकी आंखें बन्द होती हैं और वे पूर्ण रूप से निर्भर होते हैं। आपने चिड़ियों तथा अन्य पक्षियों के बच्चों को देखा होगा जो अकस्मात घोंसलों से गिर गये हों, ऐसे पक्षियों को **नीडीकोलस** (Nidicolous) कहते हैं जिसका अर्थ होता है घोंसलों में रहने वाले। ये पक्षी कई सप्ताह तक घोंसलों में रहते हैं। इनके माता-पिता तब तक इन्हें भोजन तथा ऊष्मा देते हैं और सुरक्षा करते हैं जब तक इनकी आंखें नहीं खुल जाती हैं, पूर्ण रूप से विकास नहीं हो जाता और ये उड़ने योग्य नहीं हो जाते हैं।

घोंसले पक्षियों के व्यवहार के अनुसार कितने उपयुक्त हैं उस पर विचार कीजिए। शोर करते हुए पक्षियों के झुण्ड को आपने शाम को पेड़ों के आस पास अवश्य देखा होगा। इस समय वे सारे दिन भोजन की खोज करने तथा उड़ने के पश्चात आराम करने की तैयारी कर रहे होते हैं। इसे निलयन (Roosting) कहते हैं। जो पक्षी दिन में सक्रिय होते हैं वे रात में विश्राम करते हैं जबकि निशाचर पक्षी जैसे उल्लू तथा नाईटजार दिन के समय विश्राम करते हैं। कुछ पक्षी जैसे कोयल (चित्र 16.24) अकेली विश्राम करती है। अन्य पक्षी जैसे बुलबुल (चित्र 16.16) छोटे-छोटे समूहों में विश्राम करती हैं। लेकिन मैना (चित्र 16.27) बड़े-बड़े समूहों में विश्राम करने के लिए प्रसिद्ध हैं। कुछ पक्षी जैसे कि मैना, घरेलू कौवा,



?7 मैना।

जंगली कौवा तथा तोता (चित्र 16.4, 16.5, 16.6) बड़े समूहों में विश्राम क्यों करते हैं? इसके तीन लाभ होते हैं। (1) विश्राम करने वाले सदस्य एक दूसरे की गर्मी प्राप्त कर सकते हैं (2) समूह में कोई न कोई पक्षी जागरूक होता है जो भक्षक को देख सके और दूसरों को इसकी सूचना दे सके (3) यह भी सम्भव है कि वह समूह एक सूचना केन्द्र के रूप में कार्य करता हो जिसमें किसी पक्षी ने कहीं कोई भोजन का अच्छा स्रोत देखा हो तो वह दूसरों को बता दे।

भारत में पाए जानी वाली 1200 स्पीशीज में से 900 सारे वर्ष यहीं रहती हैं और जनन करती हैं। शेष 300 स्पीशीज प्रवासी हैं। वे एशिया तथा यूरोप के उत्तरी भागों में हिमालय को पार करके आती हैं। इन क्षेत्रों की अधिक सर्दी से बचने के लिए तथा मध्य और दक्षिणी भारत की गर्मी और लम्बे दिनों का आनन्द लेने के लिए वे

यहा पर प्रवास करती हैं। सर्दियों में प्रवासी पक्षियों के बत्तख, गीज, वेगटिल तथा फ्लाईकेचर प्रमुख उदाहरण हैं। ये सितम्बर या अक्तूबर में हमारे यहाँ आती हैं और मार्च या अप्रैल में वापिस चली जाती हैं। यदि आप सारे वर्ष अलग-अलग समय पर पक्षियों को देखो तो आपको पता चलेगा कि जो पक्षी आपने सर्दियों में देखे थे वे गर्मियों में नहीं हैं।

मनुष्यों की तरह पक्षी भी दृष्टि तथा आवाज पर काफी निर्भर करते हैं। यही कारण है कि वे हमें बहुत आकर्षक लगते हैं। हमारा सुझाव है कि पक्षियों के व्यवहार को बड़े ध्यान से देखिये और सुनिये। यहां तक कि सामान्य कौवा भी हमारे ज्ञान में वृद्धि कर सकता है। "मोबिंग" इसका एक प्रमुख स्वभाव है। अपनी कर्कश आवाज से यह चीलों तथा अन्य पक्षियों के पीछे उड़कर यहाँ तक कि मानव को भी परेशान करता है। इसे ही मोबिंग कहते हैं। इसकी बारंबारता समय और इसके द्वारा तंग होने वाले जीवों का एक रिकार्ड क्यों न बनाया जाए? इसके बाद आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि इस व्यवहार का उसे क्या लाभ है?

केवल कौवा ही नहीं बल्कि अन्य पक्षी भी शिकारी पक्षियों, सांपों अथवा बिल्ली को देखकर शोर मचाते हैं तथा अन्य संकट की सूचना देते हैं। सबसे अद्भुत बात यह है कि विभिन्न स्पीशीज की संकट कालीन सूचना की आवाज एक जैसी होती है। वास्तव में विभिन्न स्पीशीज इस आवाज को समझती हैं और एक दूसरे को संकटकालीन आवाज का उत्तर देती हैं। संकटकालीन आवाज इस प्रकार की जाती है कि सूचना देने वाले का पता लगाना कठिन होता है। इससे यह लाभ होता है कि सूचना देने वाला पक्षी अधिक सुरक्षित रहता है। इसके बिल्कुल विपरीत नर बया तथा अन्य पक्षियों की सम्भोग की आवाज का स्रोत पता करना बहुत ही आसान होता है। इससे नर को लाभ होता है।

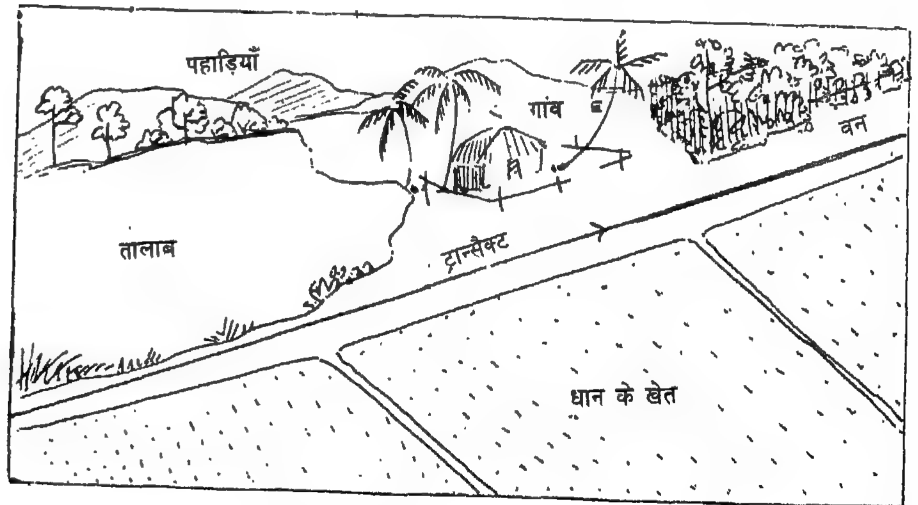
इस प्रकार पक्षियों की रचना तथा व्यवहार हमें ऐसे काफी अवसर देते हैं जिससे पता लगे कि जीव अपने जीवन-यापन के लिए विभिन्न प्रकार के अनुकूलन अपनाता है। इनके विषय में पढ़ना मनोरंजक है। लेकिन स्वयं बाहर जा कर इनका प्रेक्षण करना और भी ज्यादा अच्छा लगता है। पक्षियों को देखते समय यदि आपको और अधिक विवरण का पता लगाना हो तो "बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी" द्वारा प्रकाशित स्वर्गीय डा. सलीम अली की पुस्तक "इन्डियन बर्ड्स" को पढ़ें। लेकिन याद रखो डा. सलीम अली के पास ऐसी कोई संदर्शिका नहीं थी। उन्होंने पक्षियों के बारे में सब कुछ प्रेक्षणों के आधार पर सीखा। आपको भी ऐसा ही करना चाहिये।

करने के लिए प्रोजेक्ट

1. उन पक्षियों की संख्या आसानी से बढ़ाई जा सकती है जिनकी आप पहचान कर सकते हो। ऐसा करने के लिए सबसे पहले आप साधारण से साधारण पक्षी जिसे आप जानते हों जैसे घरेलू कौवा, जंगली कौवा, गौरेया अथवा कबूतर से आरम्भ करें। अपनी कापी में अपने ही शब्दों में प्रत्येक स्पीशीज का विवरण लिखें और जब आप उसी पक्षी

को दोबारा अच्छी तरह से देखें तो उस विवरण में संशोधन करते रहें। जिस पक्षी को आप अभी तक न पहचान सके हों उसका भी विवरण लिखें और उसे अपनी ओर से कोई अस्थायी नाम दे दें। उसके बाद किसी से पूछ कर अथवा डा. सलीम अली की पुस्तक देख कर उस पक्षी का सही नाम लिख दें। ऐसा करने से यह आपकी आदत बन जाएगी कि कहीं पर भी आप जायेंगे आप पक्षी को पहचान सकेंगे। इनके अंग्रेजी में सामान्य नाम भी याद रखना लाभदायक है। अधिकांश लोग इनके वैज्ञानिक नाम याद रखने का प्रयत्न नहीं करते।

2. रेखा खंड विधि से किसी क्षेत्र में पक्षियों की संख्या और विविधताएं पता करने का प्रयत्न करें। इस क्रियाकलाप का यह उद्देश्य है कि आप उस क्षेत्र में पाये जाने वाले सभी पक्षियों के सभी स्पीशीज के बारे में लिखें। लेकिन पक्षी गतिशील जीव होते हैं, इसलिए वे एक क्षेत्र में कभी पाये जा सकते हैं कभी नहीं। अतः पक्षियों के लिए इस प्रकार के प्रेक्षण हेतु एक विशेष अवधि को ही ध्यान में रखना चाहिए। इसकी सबसे अच्छी विधि यह है कि किसी निर्धारित दूरी तक सीधी रेखा में चलें। इसके लिए आप 600 मीटर चलें। लेकिन प्रत्येक दस मीटर के बाद 2 मिनट के लिए रुकें। क्योंकि आप 10 मीटर की दूरी कुछ ही सेकंड में पार कर लेंगे अतः इस सारी क्रिया में लगभग 2 घण्टे लग सकते हैं। इस चाल से आप किसी समतल मैदान, सीधी पहाड़ी, नदी नालों पर इस क्रियाकलाप को आसानी से कर सकते हैं। ताकि इस विधि से अलग-अलग स्थानों पर थोड़ा अंतर दिखाई दे सके। इस अवलोकन को प्रातः 7 से 9 बजे के बीच



चित्र 16.28 रेखाखंड (लाईन ट्रान्सैक्ट) का चित्र।

करिए। जब आप दो मिनट के लिए रुकें तब रेखा के दोनों ओर 100-100 मीटर तक पक्षियों का प्रेक्षण करें। आप दूरी के माप का मानक इस तरीके से पता कर सकते हैं कि दस मीटर में आप कितने कदम चले। इस प्रकार आप अपनी दृष्टि से 100 मीटर की दूरी का अनुमान लगा सकते हैं।

आप रेखा खंड की क्रियाकलाप से पक्षियों की आबादी का आंकलन कहीं पर भी कर सकते हैं। इस तरह की क्रिया करने के लिए आपको भरतपुर, रंगनाथिटू या करनाल स्थित पक्षी विहार (Sanctuary) में जाने की आवश्यकता नहीं है। आप इस क्रियाकलाप को स्वयं अथवा समूह में अनेक बार करके तथा परिणामों की तुलना करके मनोरंजक बना सकते हैं। जिन पक्षियों के नाम आप नहीं जानते उनका विवरण लिखते समय आप केवल नम्बर या अक्षर से जैसे स्पीशीज I या स्पीशीज 'अ' से अंकित कर सकते हैं। आप पता करें कि ऐसे पक्षी कितने प्रकार के हैं। लेकिन जब कभी आपको इनका नाम पता लगे तो इनका नाम लिख दें।

पहले इस अभ्यास को उसी क्षेत्र में कई अलग-अलग दिनों में करें और विभिन्न दिनों में पाए जाने वाली स्पीशीज तथा प्रत्येक सदस्य की संख्या की तुलना करें। जैसे-जैसे आप अवलोकन को जोड़ते जायेंगे क्रमशः स्पीशीज की संख्या बढ़ती जाएगी। यह ज्ञात होगा कि किसी भी दिन दो घण्टे की अवधि में आपको पक्षियों की आबादी का थोड़ा ही अंश दिखाई देगा।

3. रेखा खंड विधि को एक या दो भिन्न वास स्थानों पर करके देखिये और उनके परिणामों की तुलना कीजिये। देखिये कि किस वास स्थान में ज्यादा पक्षी या स्पीशीज हैं। अलग-अलग वास स्थानों में सामान्य स्पीशीज की गणना करिये। चूंकि पक्षियों को देखना एक जीवन पर्यन्त शौक बन सकता है आप अलग-अलग वास स्थानों पर पाये जाने वाले पक्षियों के विषय में मौलिक ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
4. रेखा खंड विधि को उसी स्थान पर विभिन्न ऋतुओं में करिये। प्रवासी पक्षियों को पहचानने का प्रयास तथा उनकी तुलना डा. सलीम अली की पुस्तक से करें।
5. अधिक से अधिक पक्षियों की भोजन संबंधी आदतों की सूची बनाइये। यह क्रिया विभिन्न पक्षियों के लिए करें उदाहरणतः मैना तथा गौरेया, जो फुदक फुदक कर मैदानों में पाये जाने वाले कीटों अथवा बीजों को खाती हैं, मधुकराश जो उड़ती हुई मधुमक्खियों तथा उनके छत्तों पर आक्रमण करती है अथवा चीलें जो मृत जन्तुओं को देखकर नीचे आती हैं। पक्षियों के भोजन लेने की आदतों का सम्बन्ध शरीर की रचना और उनके व्यवहार से करें।
6. जब आप पक्षियों को देखना प्रारम्भ करेंगे तब आप बहुत से घोंसले भी देखेंगे। घोंसलों की आकृति तथा संरचना, सामग्री जिससे वह निर्मित हैं, वह स्थान जहाँ वे बने हैं और

यदि सम्भव हो सके तो उस पक्षी का नाम जिसका घोंसला है, की एक सूची बनायें।

7. जो पक्षियों का प्रेक्षण करने में रुचि रखते हैं उनके लिए विभिन्न पक्षियों की आवाज पहचानना आनन्ददायक होगा। आप जल्दी ही जान जायेंगे कि कुछ पक्षी अन्य पक्षियों की नकल करने में बहुत दक्ष होते हैं। उदाहरणतः ड्रोंगों। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि ड्रोंगों की यह योग्यता उसे किस प्रकार सहायता करती है?

8. यदि आप शाम के समय पक्षियों के एकत्र होने का स्थान देख सकें तो आपको उनके निलयन के स्वभाव के विषय में पता लगेगा। यह पता लगाना आसान होगा कि कौन सी स्पीशीज मिलकर निलय करती हैं, वह किस समय पहुंचती हैं, किस क्रम में और कितनी देर तक वे फड़फड़ाने का शोर करती हैं और सोने से पहले किन-किन चीजों को प्रदर्शित करती हैं? कुछ पक्षियों के रहने के तरीकों के बारे में जानने का प्रयत्न करें जो उन्हें निलय करने में सहायता करते हैं।

प्रश्नावली

1. स्पीशीज की परिभाषा दो।
2. संसार में तथा भारत में पक्षियों की कितनी विभिन्न स्पीशीज हैं?
3. पक्षी की पहचान करते समय आप किन-किन महत्वपूर्ण विशेषताओं को देखेंगे?
4. पारिस्थितिक कर्मता क्या है? सामान्य कौवे और एग्रेट की कर्मता क्या है?
5. पतली तथा मुड़ी हुई चोंच के क्या लाभ हैं?
6. छोटे तथा चौड़े पंख बुलबुल तथा बैब्लर की किस प्रकार सहायता करते हैं? अबाबील तथा बतासी में लम्बे, पतले पंख क्यों होते हैं?
7. ब्लैक ड्रोंगों की लम्बी तथा कटावदार पूंछ के क्या लाभ हैं?
8. नीडीफूगस तथा नीडीकोलस पक्षी किन्हें कहते हैं? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए?

सजीव जगत में संगठन

भूमिका

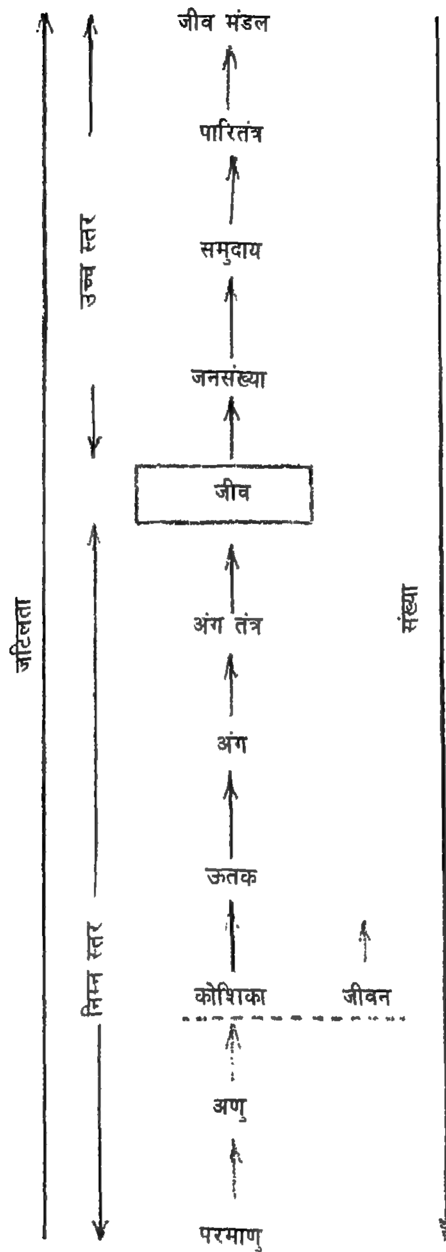
हमारे चारों ओर सरल तथा जटिल जीव हैं। पौधों में जड़, तना, पत्तियाँ तथा फल होते हैं। जन्तुओं में हाथ-पैर, आंखें, कान तथा अन्य अंग होते हैं। जीवों के आंतरिक तथा बाहय अंग उन्हें संरचनात्मक तथा क्रियात्मक गुण प्रदान करते हैं। हम जीव की तलना किसी भी मशीन से कर सकते हैं जिसका उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए होता है। प्रत्येक अंग या भाग एक विशेष कार्य करता है और अंगों का समूह विभिन्न कार्य करता है। जीव तथा मशीन दोनों में ही संपूर्ण संरचना तथा समन्वयित कार्य एक संगठन का रूप देता है। यह संरचना तथा कार्य दोनों में ही प्रकट होता है।

आइये हम किसी जीव की तुलना किसी मशीन से करके देखें। सभी जीव पोषण प्रक्रिया द्वारा भोजन बनाते अथवा लेते हैं तथा इस भोजन से श्वसन प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इस ऊर्जा का उपयोग नये पदार्थों के बनने में होता है जिससे जीवों में वृद्धि होती है। इस पूरी प्रक्रिया को **उपापचय** (metabolism) कहते हैं। ये उपापचयी क्रियाएं जीवों की संतति बनाए रखने के लिए जनन में सहायता करती हैं।

आप देख सकते हैं कि जीव तथा मशीन दोनों में ही संरचनात्मक संगठन होता है जो समन्वयित कार्य करने में सहायता करता है। संरचना को देखकर आप उसकी जटिलता का अनमान लगा सकते हो। कुछ जीव एक-कोशिकीय होते हैं। ऐसे जीवों जैसे **अमीबा, पैरामीशियम** में एक ही कोशिका सभी कार्य करती है। लेकिन बहु-कोशिकीय जटिल जीवों जैसे मनुष्य, जानवर तथा वृक्षों में विशेष कार्यों के लिए विशेष अंग होते हैं। सजीव जगत के जीवों में संरचनात्मक तथा क्रियात्मक संगठन होता है। जीवों के इस संगठन को हम विभिन्न स्तरों पर देख सकते हैं।

17.1 संगठन के स्तर

संगठन के विभिन्न स्तरों के अध्ययन के लिये किसी जीव को प्रारम्भिक स्तर मान सकते हैं। इस स्तर को **जैविक स्तर** कहते हैं। यह जीव किसी भी प्रकार का पौधा या जानवर हो सकता है। कुछ सामान्य नियमों के आधार पर सरल से जटिल संगठन के स्तर बनाये जा सकते हैं (चित्र 17.1)। इस प्रकार संगठन के स्तरों को उच्च स्तर तथा निम्न स्तर दो वर्गों में बांटा जा सकता है।



चित्र 17.1 सजीव जगत में संगठन के विभिन्न स्तर।

उच्च स्तर

आप सभी **होमोसेपिएन्स** (Homo sapiens) नामक एक विशेष जाति के जीव हैं। इसी प्रकार आपके कुटुम्ब के सभी सदस्य, पास-पड़ोस, कस्बे, प्राँत, देश-प्रदेश और संसार के सभी मनुष्य होमोसेपिएन्स जाति के सदस्य हैं। किसी विशेष जाति के समूह को **आबादी** (Population) कहते हैं। आबादी संगठन के पदानुक्रम में दूसरा स्तर है।

क्रियाकलाप — 1

अपने आस-पास के विभिन्न पौधों तथा जंतुओं को देखिये। इन जीवों की जनसंख्या लिखिये। इनका पौधों तथा जन्तुओं की आबादी में वर्गीकरण करिए। जंतुओं की आबादियों को पक्षी, सरीसृप, स्तनधारी आदि में वर्गीकृत किया जा सकता है। आप पौधों तथा जंतुओं की आबादी को विद्यालय, बागों तथा खेतों में देख सकते हैं। किसी आबादी के सभी जीव आकृति में एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं तथा उनमें बहुत ही कम अंतर होता है। किसी आबादी का दूसरा गुण यह है कि इसके जीवों में संकरण (interbreeding) होता है जिससे कि वे अपने समान जीव उत्पन्न कर सकते हैं। आइये, अब हम एक गेहूं के खेत का उदाहरण लें। गेहूं के खेत में अन्य दूसरी किस्म के पौधे भी उगे होते हैं जिन्हें खर-पतवार (weed) कहते हैं। खेत में आपको कुछ कीट तथा पक्षी भी दिखाई देंगे। खेत में पाई जाने वाली विभिन्न जातियों की आबादियाँ मिलकर **जैव समुदाय** (biotic community) बनाती है। जैव समुदाय संगठन का तीसरा स्तर है। किसी भी क्षेत्र की

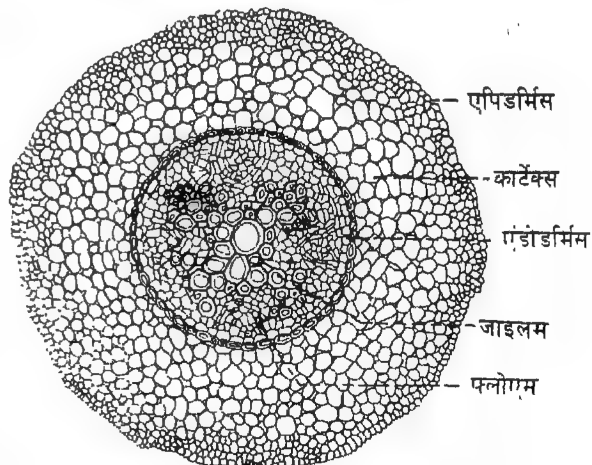
पादप तथा जन्तु समुदाय की पहचान आबादी को देखने से हो सकती है। समुदाय का शब्द सामाजिक-विज्ञान में भी प्रयोग होता है। कभी-कभी हम मनुष्यों को विद्यार्थी समुदाय, वैज्ञानिक समुदाय आदि में भी वर्गीकृत करते हैं। यह वर्गीकरण उनके कार्य की प्रकृति पर आधारित होता है।

पहाड़ों, वनों, मरुस्थलों, तालाबों, झीलों तथा अन्य वास-स्थानों जैसे भौगोलिक क्षेत्रों में पाये जाने वाले जैव-समुदायों पर उन स्थानों के भौतिक वातावरण का प्रभाव होता है। किसी स्थान के निर्जीव तथा सजीव दोनों ही कारक संगठन के चौथे स्तर को बनाते हैं। इस स्तर को **पारितंत्र** (Ecosystem) कहते हैं। आप अपने आस-पास भी विभिन्न प्रकार के वासस्थानों को देख सकते हो जो पारितंत्र बनाते हैं। पारितंत्र बहुत छोटा भी हो सकता है जैसे जल-जीवशाला तथा तालाब या बहुत बड़ा हो सकता है जैसे वन। जब हम संसार के भौगोलिक क्षेत्रों के सभी छोटे-बड़े पारितंत्रों को एक समूह में देखते हैं तब हमें संगठन का अगला अर्थात् पांचवा स्तर मिलता है जिसे **जैव-मण्डल** (Biosphere) कहते हैं। सजीवों के संगठन में यह सर्वोच्च स्तर है। यह ब्रहमाण्ड का वह भाग है जो जीवन के लिए आवश्यक है।

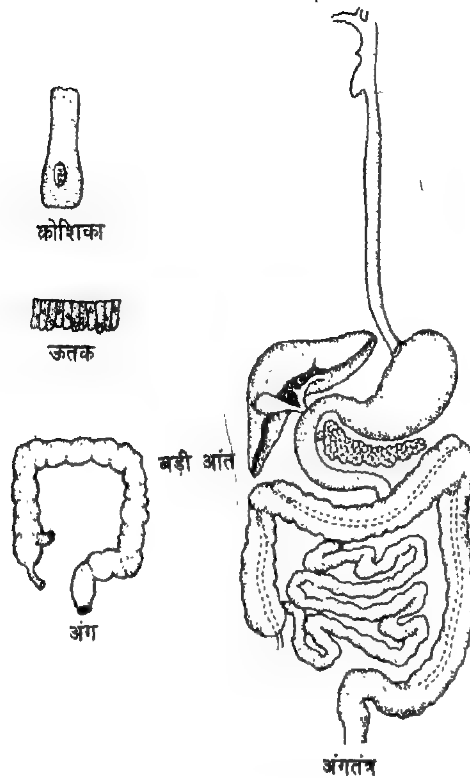
निम्नस्तर

उच्च स्तर के संगठन के अध्ययन के लिए हमने एक जीव को प्रारंभिक स्तर माना था। जीव के इसी स्तर को हम निम्न स्तर के संगठनों का अध्ययन करने के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। प्रत्येक जीव में एक पूर्ण विकसित संरचना होती है। इस संरचना में बहुत से छोटे-छोटे अंग होते हैं। ये अंग विभिन्न कार्य जैसे—भोजन निर्माण, भोजन का लेना, पाचन, अवशोषण तथा स्वांगीकरण करते हैं। प्रत्येक कार्य अलग-अलग भागों द्वारा सम्पन्न होता है जिसे सामूहिक रूप में पाचन क्रिया कहते हैं। इस प्रत्येक भाग को **अंग** (Organ) कहते हैं। ग्रीक भाषा में 'आर्गेन' का अर्थ होता है 'औजार'। मुंह, आमाशय, आंत तथा यकृत सभी अंग मिलकर पाचन तंत्र बनाते हैं। अंगों तथा उनके द्वारा किए समन्वित कार्य **अंग तंत्र** (Organ System) का निर्माण करते हैं। जीवों में अन्य कार्यों जैसे परिसंचरण, श्वसन तथा जनन करने के लिए विशेष अंग होते हैं। इसी प्रकार पौधे के विभिन्न अंग जैसे जड़, तना तथा पत्तियाँ भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं।

प्रत्येक अंग में कई छोटे-छोटे भाग होते हैं। इन भागों को **ऊतक** (Tissue) कहते हैं। विभिन्न कार्यों को करने के लिए ऊतक अपने अंगों का एक विशेष कार्य करते हैं। हम इसे



चित्र 17.2 पादप ऊतक का सूक्ष्मदर्शी चित्र।

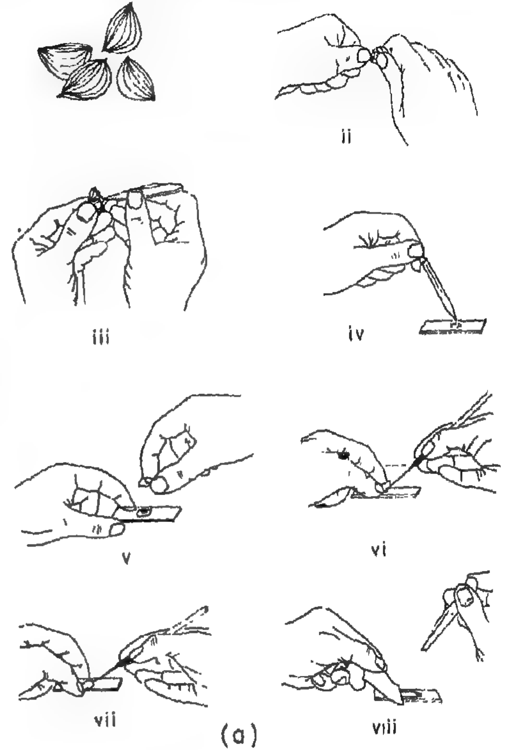


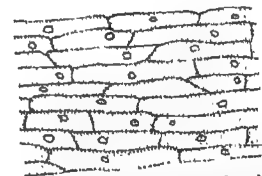
चित्र 17.3 मनुष्य की आंत में कोशिका, ऊतक, अंग तथा अंगतंत्र के स्तर।

समझाने के लिए पौधे का उदाहरण ले सकते हैं। यदि हम किसी पौधे की जड़ या तने की अनुप्रस्थ काट लें और उसे किसी रंग में रंगकर सूक्ष्मदर्शी से देखें तो हमें विभिन्न क्षेत्र दिखाई पड़ेंगे। चित्र 17.2 में इन क्षेत्रों को दिखाया गया है। ये क्षेत्र ऊतक को प्रदर्शित करते हैं। चित्र 17.3 में मनुष्य के पदानुक्रम स्तरों को दिखाया गया है।

क्रियाकलाप – 2

एक प्याज लीजिए तथा उसके छिलके से एक झिल्ली निकालिए। किसी स्लाईड पर पानी की





प्याज की झिल्ली में कोशिकाएं

(b)

चित्र 17.4 (a) प्याज की झिल्ली की सूक्ष्मदर्शी स्लाइड तैयार करने की विधि।

चित्र 17.4 (b) प्याज की झिल्ली की कोशिकाएं।

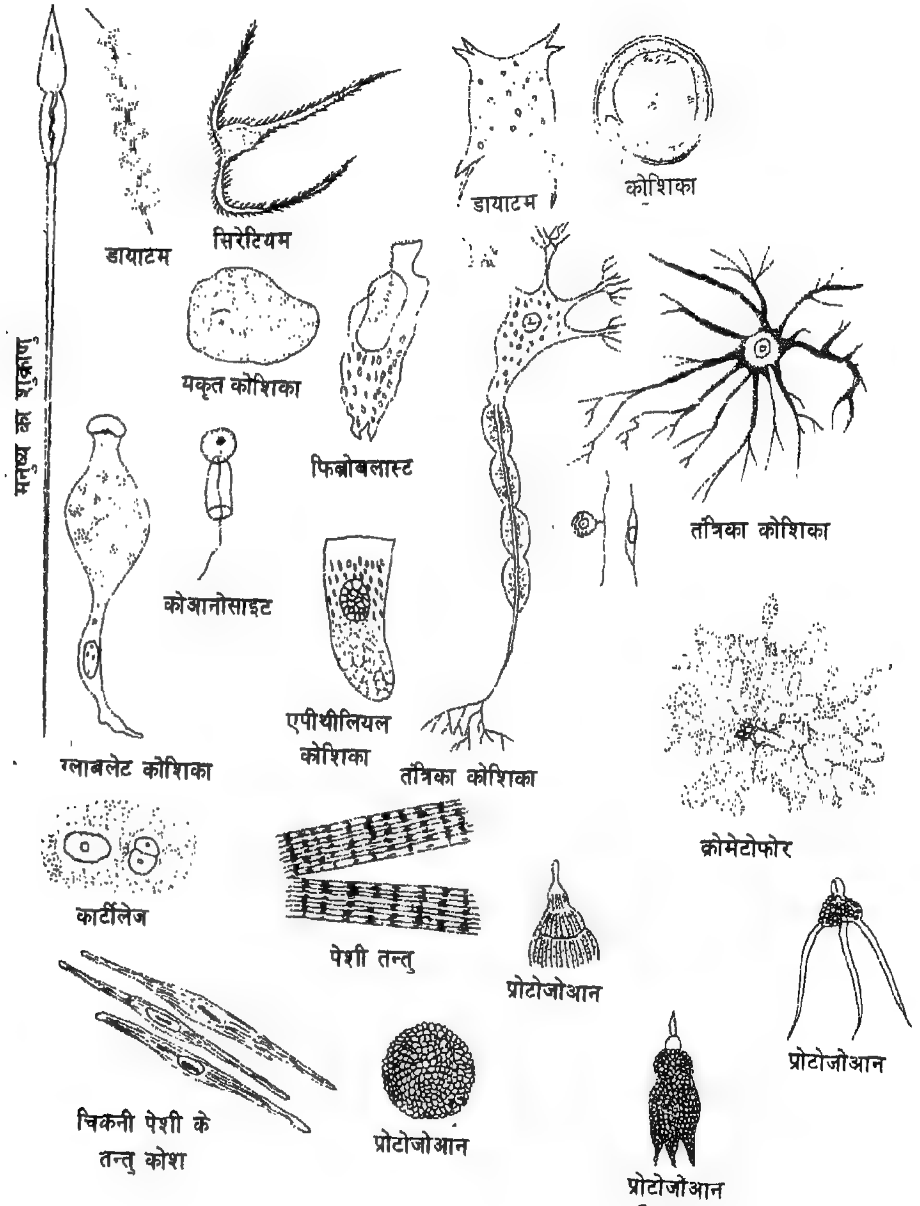
बूंद लेकर उस पर इस झिल्ली को रखिये। ड्रॉपर की सहायता से एक बूंद सैफ्रानिन डालिए। इसे बारी-बारी से कम शक्ति तथा उच्च शक्ति वाले सूक्ष्मदर्शी से देखिये। उच्च शक्ति के सूक्ष्मदर्शी से देखने के लिए कवरस्लिप का प्रयोग आवश्यक है। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर आपको ईंट की तरह की संरचनाएं आपस में जुड़ी हुई दिखाई देंगी (चित्र 17.4)। ईंट जैसी दिखने वाली संरचना को **कोशिका** (Cell) कहते हैं। ऊतक में पाये जाने वाली सभी कोशिकाएं एक ही प्रकार का कार्य करती हैं। संगठन के इस स्तर को **कोशिकीय स्तर** (Cellular Level) कहते हैं। क्या इन कोशिकाओं में और भी छोटी इकाईयाँ होती हैं? इसका उत्तर हाँ है। ये छोटी इकाईयां अणु हैं। इसे संगठन का **आण्विक स्तर** (Molecular Level) कहते हैं जो निर्जीव है। इस प्रकार सजीवों में कोशिका सबसे निम्न स्तर है।

17.2 संगठन का सामान्य आधार

जीवों में संगठन के विभिन्न स्तरों में संरचनात्मक तथा क्रियात्मक स्तर होते हैं। जीवों के संगठन के विभिन्न स्तर निम्नलिखित सामान्य नियमों पर आधारित हैं·

1. प्रत्येक स्तर पर इकाईयाँ संगठित होती हैं जिसके कारण जीव का अगला स्तर बनता है। उदाहरण के लिये विभिन्न प्रकार के अणुओं की पारस्परिक क्रिया से कोशिका बनती है। कोशिकाएं विशेष प्रकार से संगठित होकर विभिन्न प्रकार के ऊतक बनाती हैं।
2. जैसे-जैसे संगठन का स्तर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे ही उनकी संरचना तथा क्रियाएं जटिल होती जाती हैं।
3. संगठन के प्रत्येक स्तर पर कुछ सीमा तक काम करने की स्वतंत्रता होती है। यद्यपि जब ये संरचनाएँ या क्रियाएं किसी संगठन के अगले स्तर का भाग बन जाती हैं तब इनकी क्रियाओं पर कुछ अंकुश लग जाता है। उदाहरणतः किसी भी आबादी (Population) का कोई जीव अपने ढंग से जीने के लिए स्वतंत्र होता है लेकिन फिर भी उसे समुदाय के कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है।
4. अवयवों में पारस्परिक क्रिया के इन नियमों अथवा सिद्धांतों के कारण जीवों में कुछ विशेष प्रकार के गुण तथा कार्य प्रकट होते हैं। इन नियमों की अनुपस्थिति में सभी चीजें अव्यवस्थित होती। सामूहिक तथा पारस्परिक क्रिया के कारण संगठन का उच्च स्तर बनता है।
5. प्रत्येक स्तर में कुछ ऐसे विशेष गुण होते हैं जो उसकी संगठनात्मक संरचना को दर्शाते हैं। ये गुण उन अंगों के अपने गुणों के अतिरिक्त होते हैं। उदाहरणत: हृदय एक ऐसा अंग है जो रुधिर को पम्प करने का विशेष कार्य करता है। लेकिन फिर भी इसके ऊतकों तथा पेशीय कोशिकाओं के अपने-अपने गुण भी होते हैं।
6. इस प्रकार प्रत्येक स्तर मिलकर अगले स्तर की जटिलता को बढ़ाते हैं। यदि हम अणु स्तर से जैव मण्डल स्तर तक देखें तो संरचना तथा कार्य में जटिलता बढ़ती जाती है।

7. उच्च स्तर पर खण्डन होने से भी उसके कारकों पर प्रभाव नहीं पड़ता।



चित्र 17.5 विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं के कुछ उदाहरण।

उदाहरणतः किसी आबादी में बिखराव आने पर भी एक जीव अपने आप में भी जीवित रहता है।

8. अणु स्तर एवं इसके नीचे के स्तर अजैव अर्थात् निर्जीव हैं। कोशिकीय एवम् इसके ऊपर के स्तर सजीव जगत को बनाते हैं।

17.3 कोशिका संरचना

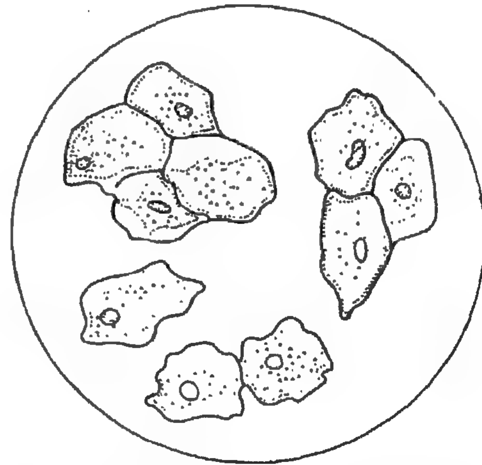
सजीव जगत में सबसे महत्वपूर्ण तथा मूल स्तर कोशिकीय स्तर है। कोशिकाएं जीवन की संरचनात्मक तथा क्रियात्मक इकाई हैं।

चित्र 17.5 में यह दिखाया गया है कि सजीवों की कोशिकाओं की आकृति, माप तथा संख्याएं परस्पर भिन्न होती हैं। कोशिका की माप 0.1 माइक्रो मीटर (जैसे **प्लूरोनिमोनिया** में) से लेकर 170×135 मिली मीटर (जैसे शुर्तुमुर्ग का अण्डा) तक हो सकती है। कोशिका की माप कोशिका के कार्य पर निर्भर करती है। उदाहरणतः कुछ तन्त्रिका कोशिकाएं एक मीटर से भी अधिक लम्बी होती हैं।

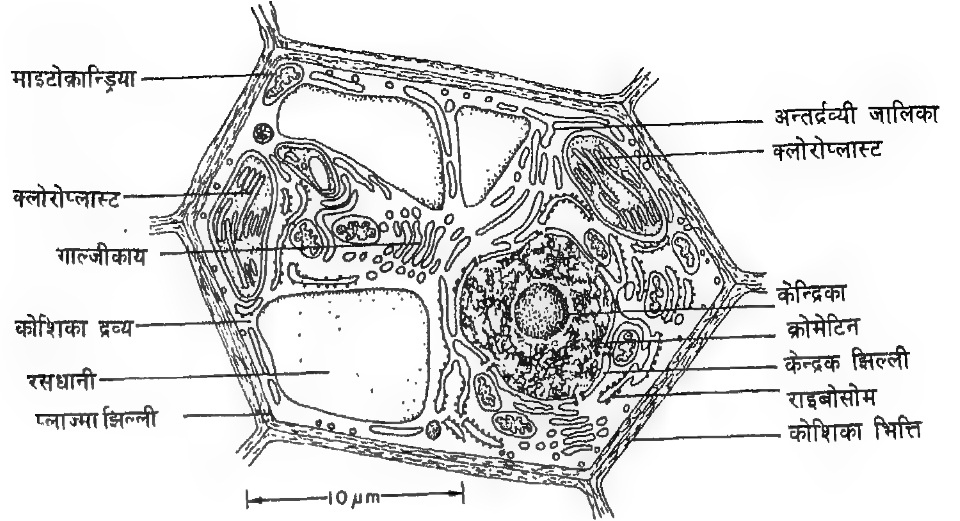
कोशिकाओं की विभिन्न आकृतियां होती हैं। कुछ एक कोशिकीय जीव जैसे **अमीबा** अपने आकार को लगातार बदलते रहते हैं। हमारे रुधिर की श्वेत रक्त कोशिकाएं भी अपनी आकृति बदलती रहती हैं। कोशिका की आकृति भी कोशिका के कार्य से संबंधित होती है। तंत्रिका कोशिका इस संबंध को प्रदर्शित करती है। तंत्रिका कोशिका एक लम्बी पतली तार की तरह होती है क्योंकि इसे शरीर के विभिन्न भागों में संदेश पहुँचाना पड़ता है। किसी जीव में कोशिकाओं की संख्या समय-समय पर बदलती रहती है। कोशिकाओं की संख्या भिन्न-भिन्न जीवों में अलग-अलग होती है। हाथी की कोशिकाओं की संख्या निश्चित रूप से चूहे की अपेक्षा अधिक होगी। क्या आप सोचते हैं कि कोशिकाओं की संख्या पौधों में भी बदलती रहती है? किसी वृक्ष तथा गुलाब के पौधे के विषय में सोचिए।

क्रियाकलाप—3

मुँह के अंदर से गाल की खाल को किसी साफ तीली से खुँरचिये। इस खुरचन को किसी स्लाईड पर रखिये। इस पर एक बूंद पानी डालिये। सुई की सहायता से इसे फैलाइये। फिर इसके ऊपर 0.5% जैनस ग्रीन की एक बूंद डालिये और इसे दो मिनट के लिए छोड़ दीजिये। इसके ऊपर कवरस्लिप रखकर इसे निम्न तथा अधिक शक्ति वाले सूक्ष्मदर्शी से बारी-बारी से देखिये और उसका चित्र बनाइये।



चित्र 17.6 गाल की कोशिकाओं का सूक्ष्मदर्शी चित्र।



चित्र 17.7 पादप-कोशिका की भीतरी रचना।

चित्र 17.7 में कोशिका के मूल अवयवों को दिखाया गया है। यहां पर हमने एक पादप कोशिका को दिखाया है क्योंकि इसमें जन्तु कोशिका से कुछ अधिक अवयव होते हैं। कोशिका के अवयव एक झिल्ली द्वारा घिरे रहते हैं जिसे **प्लाज़्मा झिल्ली** (Plasma membrane) कहते हैं।

ये झिल्ली पदार्थों के भीतर आने या बाहर जाने पर नियन्त्रण रखती है। प्लाज़्मा झिल्ली के बाहर पादप कोशिका में एक और परत होती है जिसे **कोशिका भित्ति** (Cell wall) कहते हैं। कोशिका भित्ति पादप कोशिका को निश्चित आकार तथा आकृति बनाये रखने में सहायक होती है। कोशिका के अंदर के तरल माध्यम को **कोशिका द्रव्य** (Cytoplasm) कहते हैं। कोशिका द्रव्य एक पारभासी चिपचिपा पदार्थ होता है जिसमें और भी बहुत सी संरचनाएं होती हैं। प्रत्येक संरचना को **अंगक** (organelle) कहते हैं।

कोशिका के मध्य में एक **केन्द्रक** (nucleus) होता है। केन्द्रक के चारों ओर अपनी एक झिल्ली होती है। केन्द्रक में **केन्द्रिकाएँ** (Nucleolie) तथा **क्रोमेटिन** (Chromatin) होते हैं। कोशिका विभाजन के समय क्रोमेटिन **क्रोमोसोम** में रूपान्तरित हो जाते हैं। क्रोमोसोम में वे सभी आवश्यक सूचनाएं होती हैं जो कोशिका के कार्य करने तथा अगली संतति के लिए जनन में आवश्यक होती है। क्रोमोसोम में बहुत से **जीन** होते हैं। प्रत्येक जीन जीव के एक आनुवंशिक गुण के लिए उत्तरदायी होता है। इसीलिए आनुवंशिक अध्ययन को **आनुवंशिकी** (genetics) कहते हैं।

केन्द्रक के बाहर जालिका रूपी संरचनाएं होती हैं जिन्हें **अंतर्द्रव्यी जालिका** (Endoplasmic reticulum) कहते हैं। कुछ जालिकाओं के किनारों पर **राईबोसोम** होते हैं जो कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण का कार्य करते हैं। **क्लोरोप्लास्ट** केवल पादप कोशिकाओं में होता है (चित्र 17.7)। क्लोरोप्लास्ट में ही प्रकाश संश्लेषण होता है। जन्तु कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट नहीं होते हैं।

कोशिका के महत्वपूर्ण अंगकों में **माइटोकॉन्ड्रिया** (Mitrochondria) भी एक अंगक है। एक कोशिका में बहुत से माइटोकॉन्ड्रिया होते हैं। माइटोकॉन्ड्रिया में भोजन का संपूर्ण ऑक्सीकरण होता है जिससे कोशिका को बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी कारण माइटोकॉन्ड्रिया को कोशिका का पावर हाउस कहते हैं। **गाल्जीकाय** (Golgi apparatus)-चपटी झिल्लियों की एक संरचना होती है। इसमें कोशिका से स्रावित होने वाले पदार्थों पर प्रक्रिया होती है। ये स्रावित पदार्थ **रसधानियों** (Vacuoles) में आ जाते हैं। रसधानियों में प्रायः कोशिका-रस, लवण, शक्कर तथा पानी में घुले हुए बहुत से वर्णक (pigments) होते हैं। ये रसधानियाँ जन्तु कोशिका की अपेक्षा पादप कोशिका में अधिक होती हैं। जन्तु कोशिका पादप कोशिकाओं से कई प्रकार से भिन्न होती है। पादप कोशिकाओं में कोशिका भित्ती होती है जो सेल्यूलोज की बनी होती है किन्तु जन्तु कोशिका में ऐसी कोई भित्ती तथा सेल्यूलोज नहीं होता। पादप कोशिका में क्लोरोप्लास्ट होता है जबकि जन्तु कोशिका में नहीं होता। पादप कोशिकाओं में बड़ी-बड़ी रसधानियां होती हैं जो कोशिका का काफी भाग घेरे रहती हैं। फलस्वरूप कोशिका-द्रव्य प्लाज़्मा झिल्ली के साथ-साथ छोटे से भाग में ही दिखाई देता है परन्तु जन्तु कोशिका में या तो रसधानियां होती ही नहीं, अगर होती हैं तो बहुत छोटी। अतः कोशिका द्रव्य समान रूप से कोशिका में वितरित रहता है। जन्तु कोशिकाओं तथा जीवाणु कोशिकाओं की सतह पर कुछ बारीक संरचनाएं जिन्हें **सिलिया** (Cilia) कहते हैं अथवा लम्बे हन्टर की तरह की संरचनाएं जिन्हें **कशाभिका** (Flagella) कहते हैं, पाई जाती हैं। ये संरचनाएं गमन में सहायता करती हैं (चित्र 17.5)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी कोशिका के प्रत्येक अंगक विशेष कार्य करते हैं। ये सब संगठित होकर एक सजीव इकाई बनाते हैं जिसे कोशिका कहते हैं।

सजीवों का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि उनमें जनन की क्षमता होती है और कोशिकाएं ही ये कार्य करती हैं। कोशिकायें विभाजन की प्रक्रिया द्वारा नई कोशिकायें बनाती हैं। अधिकतर सभी कोशिकाओं में विभाजन एवं वृद्धि की क्षमता होनी है। कोशिका विभाजन के समय केन्द्रक भी दो भागों में बंट जाता है और प्रत्येक कोशिका में एक केन्द्रक चला जाता है। प्रत्येक केन्द्रक में क्रोमोसोम की संख्या निश्चित होती है। कोशिका विभाजन से पहले प्रत्येक क्रोमोसोम से दो समान क्रोमोसोम बन जाते हैं, जिससे केन्द्रक में क्रोमोसोम की संख्या दोगुनी हो जाती है। केन्द्रक विभाजन के समय क्रोमोसोम का एक जोड़ा संतति कोशिका (daughter cell) में चला जाता है। इस प्रकार दोनों संतति कोशिकाओं में क्रोमोसोम

की संख्या बराबर होती है और उनमें प्रत्येक क्रोमोसोम के गुण भी समान होते हैं।

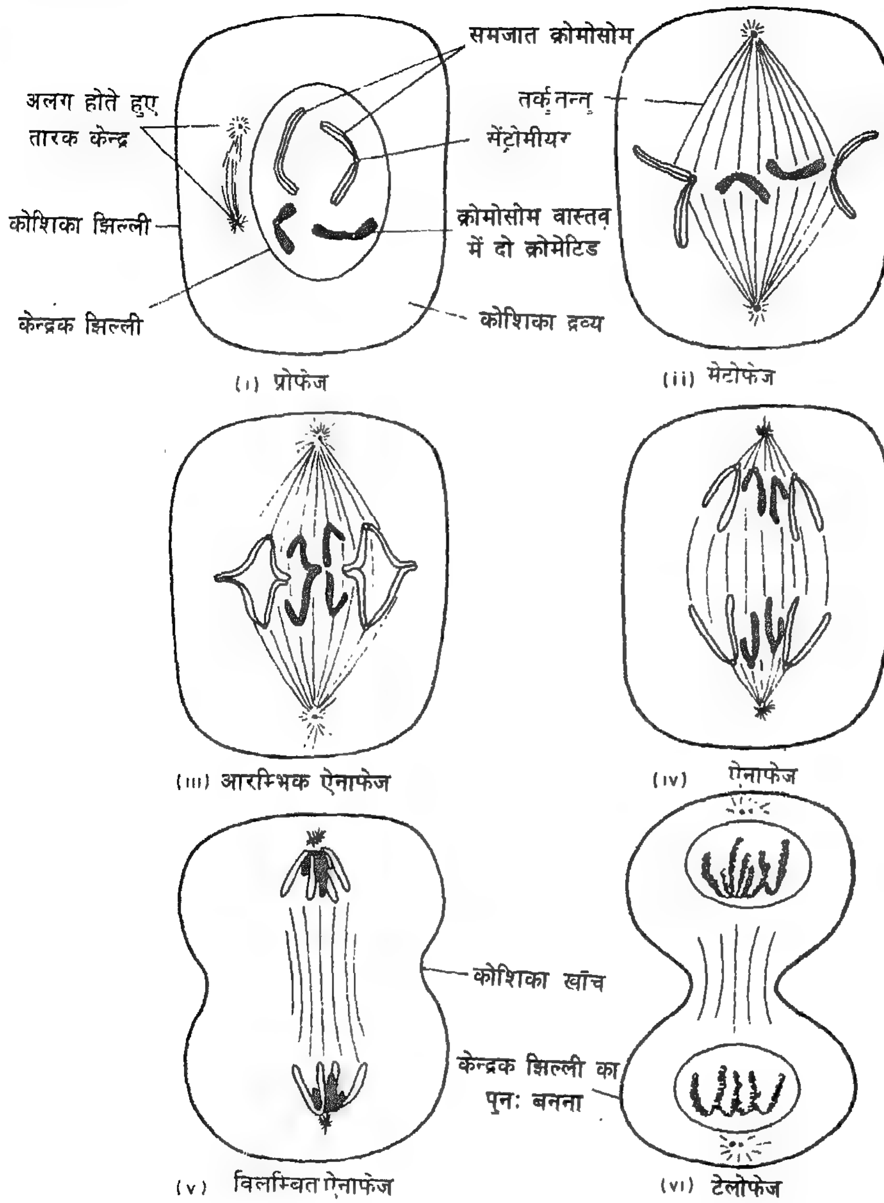
17.4 माइटोसिस (Mitosis) तथा मिऑसिस (Meiosis)–कोशिका विभाजन की दो विधियाँ

1877 में जर्मनी के जीव वैज्ञानिक वाल्थर फ्लैमिंग ने कोशिका विभाजन की प्रक्रिया को देखा। उन्होंने इस प्रक्रिया को **माइटोसिस** (सम सूत्री विभाजन) का नाम दिया। माइटोसिस का अर्थ है धागों का बनना। यह विवरण केन्द्रक विभाजन के संदर्भ में है जिसमें क्रोमोसोम धागों की तरह होते हैं। सम सूत्री कोशिका विभाजन सभी एक कोशिकीय जीवों में होता है। बहु कोशिकीय जीवों में माइटोसिस द्वारा कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होती है जिसके कारण जीव की वृद्धि तथा उसका विकास होता है।

माइटोसिस

माइटोसिस पांच अवस्थाओं में पूरा होता है। विभाजन से पहले केन्द्रक बड़ा हो जाता है और उसमें क्रोमोसोम धागे की तरह की संरचनाओं के रूप में दिखाई देने शुरू हो जाते हैं। क्रोमोसोम की संख्या दोगुनी हो जाती है। इस अवस्था को **अन्तरावस्था** (Interphase) कहते हैं। कोशिका विभाजन प्रोफेज़ से शुरू होता है (चित्र 17.8)। इस अवस्था में क्रोमोसोम मोटे और छोटे हो जाते हैं और केन्द्रक झिल्ली लुप्त हो जाती है। प्रत्येक क्रोमोसोम स्पष्ट रूप से दो भाग में दिखाई देते हैं जिन्हें क्रोमेटिड कहते हैं। ये क्रोमेटिड आपस में **सेन्ट्रोमीयर** द्वारा जुड़े रहते हैं। प्रत्येक क्रोमेटिड एक क्रोमोसोम बन जाता है। **प्रोफेज** अवस्था में दो छोटे पिण्ड भी होते हैं जिन्हें **तारककेन्द्र** (Centrioles) कहते हैं। तारककेन्द्र कोशिका के दोनों ओर जाना आरम्भ कर देते हैं। अगली अवस्था **मेटाफेज** में तारककेन्द्र से बहुत से तन्तु निकलते हैं जो क्रोमोसोम के सेन्ट्रोमीयर से जुड़ जाते हैं। इसे **तर्कु** (spindle) तन्तु कहते हैं। प्रत्येक क्रोमोसोम से इस अवस्था में दो क्रोमेटिड अलग होना आरम्भ कर देते हैं जो **ऐनाफेज** अवस्था में पूर्ण रूप से अलग हो जाते हैं। जैसा हमने पहले बताया कि क्रोमेटिड क्रोमोसोम की ही **प्रतिलिपि** (कापी) होते हैं। प्रतिलिपि बनने की प्रक्रिया अन्तरावस्था में ही आरम्भ हो जाती है लेकिन मेटाफेज में बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। ऐनाफेज की बाद की अवस्था में कोशिका के बीच में एक खांच बन जाती है और क्रोमेटिड विपरीत ध्रुवों पर एकत्रित हो जाते हैं। कोशिका विभाजन की अंतिम अवस्था **टेलोफेज़** (अंत्यावस्था) होती है जिसमें क्रोमेटिड से क्रोमोसोम बन जाते हैं और वह दो सिरों पर चले जाते हैं। केन्द्रक झिल्ली पुनः बन जाती है और दो केन्द्रकों को अलग-अलग कर देती है। जन्तु कोशिकाओं में कोशिका खांच बनती है और अंततः दो भागों में विभक्त हो जाती है। पादप कोशिका में खांच नहीं बनती बल्कि कोशिका के बीचों बीच एक नई कोशिका भित्ति बनती है जो दोनों कोशिकाओं को अलग कर देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कोशिका विभाजन की प्रक्रिया में क्रोमोसोम कोशिका का एक महत्वपूर्ण



चित्र 17.8 माइटोटिक विभाजन की विभिन्न अवस्थाएं।

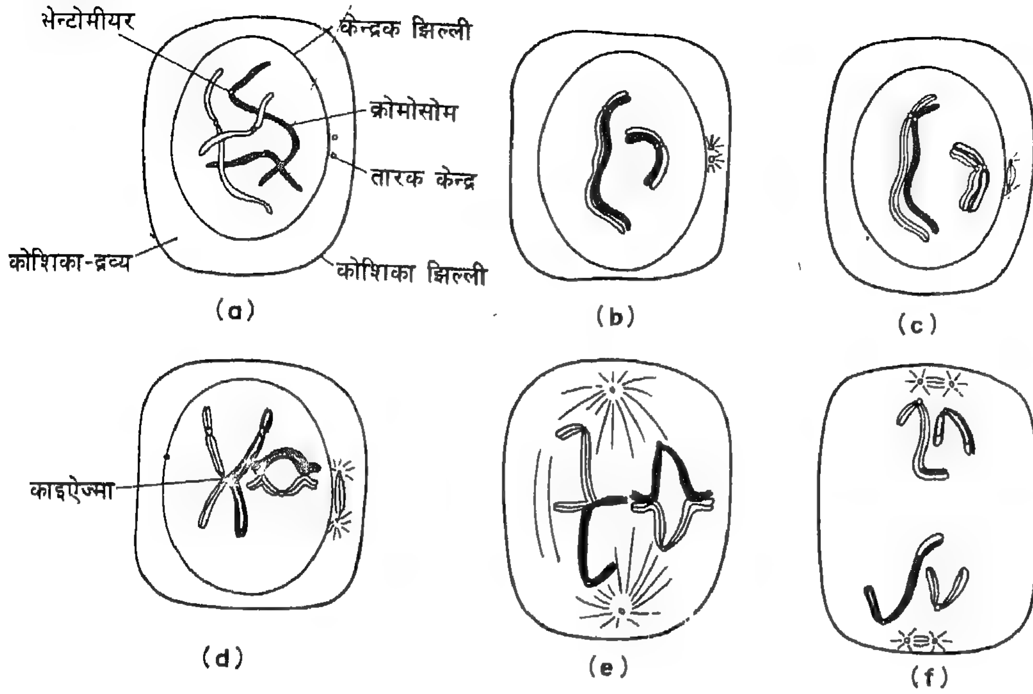
अंग है। ये कोशिका विभाजन के समय ही स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। विराम अवस्था में अर्थात् जब कोशिका में विभाजन नहीं हो रहा होता, क्रोमोसोम केन्द्रक में बहुत पास-पास संकुलित रहते हैं जिसे कोमेटिन कहते हैं। प्रत्येक स्पीशीज की कोशिका में क्रोमोसोम की संख्या निश्चित होती है। चूहे की कोशिका में क्रोमोसोम की संख्या 40, आलू में 48, कुत्ते में 64 तथा मनुष्य में 46 होती है। ये क्रोमोसोम दो-दो के जोड़ों में होते हैं और इनकी लम्बाई तथा आकार निश्चित होता है। इनकी लंबाई तथा आकार सेन्ट्रोमीयर के स्थान द्वारा निश्चित होते हैं। एक जोड़े के प्रत्येक सदस्य को **होमोलोगस** (समलिंगी) क्रोमोसोम कहते हैं। प्रत्येक कोशिका में क्रोमोसोम की कुल संख्या द्विगुणित संख्या (**डिप्लॉइड संख्या**) में होती है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर में 46 डिप्लॉइड होमोलोगस क्रोमोसोम होते हैं। आप ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं आपके शरीर में माइटोसिस द्वारा कोशिकाओं की संख्या तो बढ़ती रहती है लेकिन प्रत्येक कोशिका के केन्द्र में 46 क्रोमोसोम होते हैं।

मिऑसिस

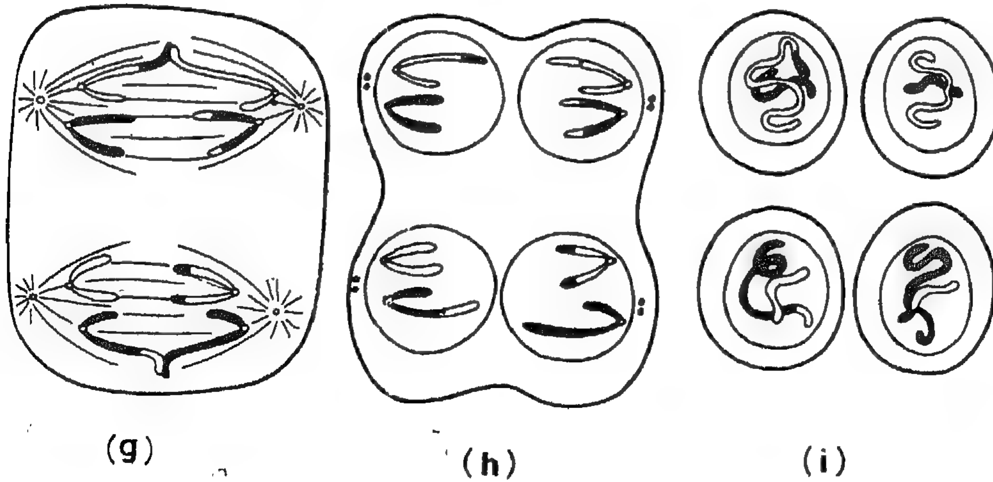
माइटोसिस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अपवाद लैंगिक जनन है। इसमें कुछ विशेष कोशिकाएं भाग लेती हैं जिन्हें शुक्राणु कोशिका तथा अण्ड कोशिका कहते हैं। ये कोशिकाएं पादप तथा जन्तु जगत दोनों में ही होती हैं। मनुष्य में 46 क्रोमोसोम वाली कोशिका बनाने के बजाए यह प्रक्रिया 23 क्रोमोसोम वाले युग्मक (gametes) बनाती है। युग्मक नर तथा मादा की लैंगिक कोशिकाओं में बनते हैं तथा इनमें क्रोमोसोम की संख्या आधी होती है। इस प्रकार युग्मक डिप्लॉइड न होकर अगुणित (**हैप्लॉयड**) होते हैं। युग्मक में दो की बजाए क्रोमोसोम का एक ही सेट होता है। निषेचन प्रक्रिया में नर तथा मादा युग्मक मिलकर **युग्मनज** (Zygote) बनाते हैं। युग्मनज डिप्लॉइड होता है और इसमें उस स्पीशीज के पूरे क्रोमोसोम (दो सेट) होते हैं। इसमें आधे क्रोमोसोम (एक सेट) माता से और आधे (दूसरे सेट) पिता से आते हैं।

मिऑसिस प्रक्रिया भी विभिन्न अवस्थाओं में होती है। एक डिप्लॉयड क्रोमोसोम (2N) वाली कोशिका प्रोफेज–1 से विभाजन की प्रक्रिया आरम्भ करती है। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर क्रोमोसोम एक धागे की तरह दिखाई देते हैं। माइटोसिस प्रक्रिया के विपरीत जिसमें दोनों क्रोमोसोम एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं, मिऑसिस में दोनों क्रोमोसोम एक दूसरे के पास आकर समलिंगी क्रोमोसोम के जोड़े बन जाते हैं जैसा कि चित्र 17.9c में दिखाया गया है।

प्रत्येक क्रोमोसोम के दो क्रोमेटिड दिखाई पड़ते हैं। काइऐज्मा वाले भाग के अतिरिक्त क्रोमेटिड के दो जोड़े अलग होने लगते हैं (चित्र 17.9d)। इस क्षेत्र (काइऐज्मा) में क्रोमैटिड वास्तव में अपने भागों का आदान-प्रदान (विनिमय) या क्रासिंग ओवर करते हैं। मेटाफेज अवस्था में एक तर्कु बन जाता है तथा होमोलोगस क्रोमोसोम के मध्य स्थल पर आ जाता है (चित्र 17.9e)। ऐनाफेज अवस्था में क्रोमोसोम विपरीत ध्रुवों पर चले जाते हैं तथा अपने साथ विनियम किये हुए भाग भी ले जाते हैं (चित्र 17.9f)। द्विगुणन तथा क्रोमेटिड के अलग होने के कारण इस अवस्था में कोशिका में N क्रोमोसोम होते हैं। प्रथम मिऑटिक विभाजन I



चित्र 17.9 मिऑटिक विभाजन की विभिन्न अवस्थाएं (b,e,f अवस्थाओं में क्रोमोसोमों के भागों में आदान-प्रदान हो रहा है)। देखें कि मिऑटिक g अवस्था से आरम्भ होती है और i। अवस्था में चार युग्मक बनाकर समाप्त हो जाती है।



यहां समाप्त हो जाता है और दूसरा मिऑटिक विभाजन II आरम्भ हो जाता है। प्रोफेज अवस्था में एक तर्कु बनता है जो पहले विभाजन में बने तर्कु के लंबवत् होता है (चित्र 17.9g)। ऐनाफेज II में सेन्ट्रोमीयर विभक्त होते हैं और होमोलोगस क्रोमेटिड अलग हो जाते हैं। अंत में टेलोफेज अवस्था में एक केन्द्रक से चार केन्द्रक बन जाते हैं तथा प्रत्येक नए बने केन्द्रक में क्रोमोसोम की संख्या हैप्लॉयड (N) होती है (चित्र 17.9h)। केन्द्रक के चारों ओर केन्द्रकीय झिल्ली बन जाती है, कोशिका द्रव्य विभक्त होता है और मिऑसिस के अंत में चार युग्मक कोशिकाएं बन जाती हैं (चित्र 17.9i)। अगर इन कोशिकाओं को शुक्राणु बनना है तो इन चारों कोशिकाओं में ये पूँछ बन जाती है जिससे कि शुक्राणु गतिशील रह सकें।

मिऑसिस को **न्यूनकारी** (रिडक्शनल) **विभाजन** भी कहते हैं क्योंकि इससे क्रोमोसोम की डिप्लॉइड संख्या आधी रह जाती है। वास्तव में मिऑसिस में दो उप विभाजन होते हैं जैसा कि चित्र 17.9 में दिखाया गया है। तालिका 17.1 में माइटोसिस तथा मिऑसिस के गुणों में अंतर दिखाए गये हैं।

तालिका 17.1

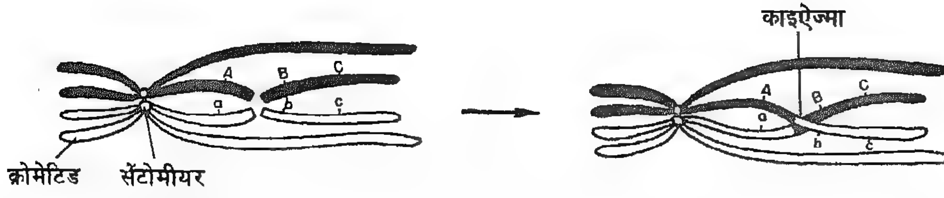
माइटोसिस तथा मिऑसिस

माइटोसिस	मिऑसिस
1. सभी कोशिकाओं में होती है	1. केवल लैंगिक कोशिका में होती है।
2. क्रोमोसोम की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता	2. क्रोमोसोम की संख्या आधी हो जाती है।
3. प्रक्रिया 5 अवस्थाओं में पूर्ण होती है।	3. दो उप विभाजनों में पूर्ण होती है प्रत्येक उपविभाजन में 4 या 5 अवस्थाएं होती हैं।
4. क्रोमोसोम के पदार्थों में आदान–प्रदान नहीं होता। संतति कोशिकाओं में भी उसी प्रकार के क्रोमोसोम होते हैं जैसे पैतृक कोशिका में होते हैं आनुवंशिकी संतति में कोई भी विविधता नहीं होती।	4. क्रोमोसोम में विनिमय होता है। संतति कोशिका में क्रोमोसोम पदार्थ का कुछ भाग पितृ कोशिका से तथा कुछ भाग मातृ कोशिका से आता है। संरचना में भी विविधता होती है।

17.5 विनिमय का महत्व

लैंगिक कोशिकाओं में विभाजन मिऑसिस द्वारा होता है। हमने चित्र 17.9 में देखा है कि किस प्रकार क्रोमेटिड काइऐज्मा क्षेत्र में क्रोमोसोम पदार्थों का आदान-प्रदान करते हैं।

जब होमोलोगस क्रोमोसोम के जोड़े बनते हैं तब माता-पिता के क्रोमेटिड जीन का आदान-प्रदान करते हैं। चित्र 17.10 में दिखाया गया है कि माता का क्रोमेटिड पिता के क्रोमेटिड से b तथा c जीन को ले लेता है। जबकि पिता के क्रोमेटिड उसके बदले



चित्र 17.10 मिऑसिस विभाजन के समय होमोलोगस क्रोमोसोम के क्रोमेटिडों में आदान-प्रदान होता है।

माता के क्रोमेटिड से B तथा C जीन ले लेता है। इस प्रकार जो क्रोमोसोम बना वह माता-पिता के क्रोमोसोम से भिन्न है। वास्तव में इसके कुछ गुण माता-पिता दोनों के होते हैं। इस प्रकार के क्रासिंग ओवर तथा क्रोमेटिड के आदान-प्रदान करने से युग्मकों की जीन संरचना में विविधता आ जाती है। उपरोक्त चुने हुए जीनों में एक युग्मक में जीन का क्रम Abc होगा तो दूसरे में ABC।

जीन क्रोमोसोम का एक भाग है और आनुवंशिक गुणों के लिए उत्तरदायी है। वे माता-पिता से संतति में आते हैं। माता-पिता के क्रोमोसोम में क्रासिंग ओवर होने के कारण आप देख सकते हो कि उनकी संतान में कुछ गुण माता के होते हैं तो कुछ गुण पिता के। अब आप समझ सकते हैं कि एक ही माता-पिता के दो बच्चों में कितनी समानता होती है लेकिन फिर भी वे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। युग्मक में जीन की संरचना में अंतर आने के कारण ऐसा होता है।

जुड़वां बच्चों में क्या होता है? उनके गुणों में कोई विविधता नहीं होती इसीलिए उन्हें जुडवां बच्चे (Identical twins) कहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक निषेचित अंडा कुछ समय विभाजन करने के बाद दो भ्रूणों (Embryos) में अलग हो जाता है। दोनों भ्रूणों में एकसमान क्रोमोसोम होंगे क्योंकि ये दोनों माइटोसिस विभाजन द्वारा बने हैं। इसी कारण दोनों जुड़वां बच्चों के विशेषक समान होंगे। दोनों जुड़वां बच्चों का लिंग भी समान होगा। ऐसी ही स्थिति तीन या अधिक बच्चे उत्पन्न होने पर होगी। यद्यपि मनुष्य में एक साथ दो या अधिक बच्चे पैदा यदा कदा ही उत्पन्न होते हैं।

जुड़वा बच्चे असमान (Fraternal twins) भी होते हैं। ऐसा तब होता है जब दो अलग-अलग अंडों का निषेचन दो अलग-अलग शुक्राणुओं से होता है। इस प्रकार बने दोनों युग्मनजों में क्रोमोसोम भी अलग प्रकार के होंगे तथा उनमें आनुवंशिक भिन्नता भी होगी। वे दोनों एक ही गर्भाशय में साथ-साथ वृद्धि करते हैं। इस प्रकार से उत्पन्न दोनों बच्चों के विशेषक, कभी-कभी लिंग तथा विकास आदि, सभी भिन्न होते हैं।

प्रश्नावली

1. अंतर बताइये:
   (अ) आबादी तथा समुदाय

(ब) पारितंत्र तथा जीव मंडल
(स) अंग तथा अंगक

2. "वस्तुओं" को संगठित करके उच्चस्तर बनाने पर नये-नये गुण बनते हैं। इस कथन की विवेचना, कोशिकाओं के संगठन से ऊतक बनने के उदाहरण को लेकर करें।
3. जीव मंडल स्तर पर संगठन के स्तर समाप्त हो जाते हैं। क्या आप इससे भी उच्च स्तर के विषय में सोच सकते हैं तथा उस उच्च स्तर में किस प्रकार के गुण होंगे?
4. पादप तथा जन्तु कोशिकाओं में 5 अंतर लिखिये।
5. अंतर बताइये।
   (अ) क्रोमेटिन, क्रोमोसोम तथा क्रोमेटिड
   (ब) तारककेन्द्र, सेन्ट्रोमीयर तथा काइऐज़्मा
   (स) हैप्लॉइड तथा डिप्लॉइड कोशिकाएं
6. निम्नलिखित अवययों के क्या कार्य हैं?
   (a) राइबोसोम
   (b) गाल्जीकॉय
   (c) माइटोकॉन्ड्रिया
   (d) रसधानी
   (e) पादप कोशिका भित्ति
   (f) क्रोमोसोम
   (g) क्लोरोप्लास्ट
   (h) तर्कु
   (i) न्यूक्लिओलस
   (j) प्लाज्मा झिल्ली
7. चित्रों द्वारा माइटोसिस की विभिन्न अवस्थाओं को दिखाइये।
8. मिऑसिस को रिडक्शनल विभाजन क्यों कहते हैं?
9. चित्रों द्वारा मिऑसिस की विभिन्न अवस्थाओं का स्पष्टीकरण कीजिये।
10. कोई "क्लोन" (clone) कोशिकाओं का वह समूह है अथवा जीव होता है जो केवल एक माता-पिता की संतति है और जिसमें सभी गुण उनके समान होते हैं।" इसके आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें:—
    (अ) क्लोन का जनन लैंगिक है अथवा अलैंगिक?
    (ब) क्या हम किसी जन्तु को क्लोन जनन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं?
    (स) क्या समान जुड़वां बच्चे क्लोन हैं?
11. निम्नलिखित में से किसमें माइटोसिस जनन होता है और किसमें मिऑसिस
    (अ) *एश्करिया कोलाई*
    (ब) *पैरामिशियम*
    (स) आम का वृक्ष
    (द) यीस्ट
    (इ) मेंढक।

जैव-प्रक्रियाएं – I

भूमिका

सभी जीवों की क्रियाकलापों में कुछ समानताएं हैं। वे भोजन करते हैं, उसे पचाते हैं, भोजन से ऊर्जा लेते हैं और अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालते हैं। वे इन्हीं क्रियाकलापों से अपने जीवन का संधारण करते हैं। इन सभी क्रियाकलापों के अध्ययन को शरीर क्रिया विज्ञान (PHYSIOLOGY) कहते हैं। इस अध्याय में हम जीवों के शरीर की क्रियात्मक क्रियाओं के विषय में पढ़ेंगे।

18.1 पोषण

सभी जीव हर समय कुछ न कुछ क्रियाएं करते रहते हैं। इसके लिए उन्हें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा उन्हें लिये हुए भोजन से प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार के जीव भोजन लेने के लिये विभिन्न विधियाँ अपनाते हैं। भोजन लेने की प्रक्रिया को **पोषण** कहते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसमें जीव भोजन लेते हैं ताकि वे उपापचयी क्रियाओं के लिए भोजन से ऊर्जा प्राप्त कर सकें। पोषण की मुख्यतः दो विधियाँ हैं। **स्वपोषण** (Autotrophic) तथा **परपोषण** (Heterotrophic)। स्वपोषी सजीव अपना भोजन सरल सामग्री से बनाते हैं। इस प्रकार **स्वपोषी** भोजन के उत्पादक हैं। सभी हरे पौधे स्वपोषी होते हैं। ये अपना भोजन बनाने के लिए कार्बन डाइऑक्साइड, पानी तथा खनिज लवण जैसी कच्ची सामग्री का उपयोग करते हैं। हरे पौधों में यह प्रक्रिया **प्रकाश संश्लेषण** द्वारा होती है। कुछ अन्य जीव जैसे हरित सल्फर जीवाणु पानी की अपेक्षा हाइड्रोजन को हाइड्रोजन सल्फाइड से लेते हैं।

परपोषण में जीव अपना भोजन दूसरे जीवों से लेते हैं अर्थात् ये अपना भोजन दूसरे जीवों को खाकर प्राप्त करते हैं। सभी जानवर तथा कुछ पौधे परपोषी हैं। आइये स्वपोषी तथा परपोषी में कुछ अन्तर देखें। स्वपोषी अपना भोजन सरल पदार्थों और अणुओं से बनाते हैं। अधिकांश परपोषी जटिल पदार्थों को भोजन के रूप में लेते हैं और इन्हें तोड़कर सरल पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं।

परपोषी अपना भोजन दो प्रकार से लेते हैं—1. मृत और क्षय शरीर से तथा 2. उन जीवों से जिन्हें मार कर खाते हैं। मृत तथा क्षय शरीर से भोजन प्राप्त करने वाली विधि को **मृतजीवी**

(Saprophytic) कहते हैं। एक मृतजीवी अपना भोजन सड़े गले पत्तों, पौधों तथा क्षयी पदार्थों से प्राप्त करता है। फंजाई, फफूंदी, यीस्ट, छत्रक और जीवाणु मृतजीवी हैं। ये जटिल कार्बोनिक अणुओं को सरल पदार्थों में तोड़ देते हैं। इन सरल पदार्थों का उपयोग पौधों द्वारा होता है।

पोषण की अन्य विधि को **परजीवी** (Parasitic) कहते हैं। परजीवी वे प्राणी हैं जो दूसरे प्राणियों पर आश्रित रहते हैं और उनसे अपना भोजन प्राप्त करते हैं। (परातत्व ग्रीक में अपनी चाटुकारी से मुफ्त में भोजन प्राप्त करने वाले प्राणी को परजीवी कहते थे।) रोगाणु जो मलेरिया फैलाते हैं, परजीवी का एक उदाहरण हैं। क्या आप और कुछ उदाहरण बता सकते हैं?

हमने अभी तक जीवाणु तथा फंजाई जैसे निम्न वर्गीय जीवों में पोषण के विषय में पढ़ा है। उच्च वर्गीय प्राणी जैसे पौधे, जानवर तथा मनुष्य के विषय में आप क्या जानते हैं? ये जीव **प्राणिसमभोजी** (Holozoic) के उदाहरण हैं, जो ठोस भोजन लेते हैं। इन छोटे या बड़े भोजन के टुकड़ों का अंतर्ग्रहण (Ingestion) करने की आवश्यकता होती है। इस अंतर्ग्राहित भोजन का शरीर में पाचन होता है। पाचन की इस प्रक्रिया से भोजन के जटिल पदार्थ सरलतम पदार्थों में अपघटित हो जाते हैं। रासायनिक अभिक्रिया की यह शृंखला बहुत से एन्जाइमों से उत्प्रेरित होती है। पाचन क्रिया से प्राप्त सरल पदार्थ शरीर की कोशिकाओं में अवशोषित हो जाते हैं और अपशिष्ट पदार्थ शरीर से उत्सर्जित हो जाते हैं। उच्च प्राणियों के शरीर में अंतर्ग्रहण, पाचन, अवशोषण तथा उत्सर्जन के लिए विशेष अंग होते हैं।

उच्च जन्तुओं में भोजन का अंतर्ग्रहण मुख से होता है। भोजन दांतों द्वारा पीसकर छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दिया जाता है। मुख से भोजन के छोटे-छोटे टुकड़े भोजन की नली के द्वारा आमाशय में पहुंचते हैं। पाचन क्रिया मुख्यतः आमाशय तथा छोटी आंत में होती है। भोजन का अवशोषण छोटी आंत में होता है। भोजन का उत्सर्जन बड़ी आंत तथा गुदा में होता है।

पाचन मुख से आरंभ होता है और छोटी आंत तक चलता रहता है। आप इसके विषय में अपनी पिछली कक्षाओं में पढ़ चुके हैं। इसलिए यहां पर कुछ मुख्य धारणाओं को ही दोहराया जाएगा। मुख में स्थित दांत भोजन को पीसते हैं और लार में स्थित एंजाइम स्टार्च को रासायनिक अभिक्रिया द्वारा अपघटित होने में सहायता करते हैं। यह चबाया हुआ भोजन ईसोफेगस अथवा आहार नलिका से आमाशय में पहुँचता है। आमाशय में स्थित जठरीय एंजाइम भोजन की प्रोटीन को छोटे-छोटे अणुओं में तोड़ देते हैं। इसके बाद यह पदार्थ छोटी आंत में जाता है।

ग्रहणी (Duodenum) जो कि छोटी आंत का प्रथम भाग है उसमें अग्न्याशय के रस तथा यकृत से स्रावित पित्त भोजन पर क्रिया करते हैं। एंजाइम भोजन की प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा का पाचन करते हैं। पित्त, पदार्थों का इमल्शन बनाने में सहायता करते हैं। इस के बाद यह भोजन आंत के दूसरे भाग जिसे इलियम कहते हैं, में अवशोषित हो जाता है। वह समस्त पोषक तत्व जिनका मुख, आमाशय, ग्रहणी तथा इलियम द्वारा पाचन हुआ है, आंत अंकुरों में अवशोषित होकर रुधिर, यकृत, लसीका आदि में चले जाते हैं। अपचित पदार्थ बड़ी आंत में पहुंच

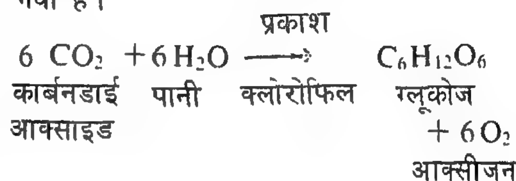
जाते हैं और रेक्टम एवं गुदा द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं। इस प्रक्रिया को **उत्सर्जन** कहते हैं।

भोजन से ऊर्जा का निकास दो चरणों में होता है। पहले चरण में जटिल अणु सरल अणुओं में अपघटित होते हैं। दूसरे चरण में भोजन के सरल अणु शरीर में प्राप्त ऑक्सीजन लेकर ऑक्सीकृत होते हैं तथा कार्बन डाईआक्साइड, जल तथा ऊर्जा छोड़ते हैं। इसी चरण में श्वसन होता है जिसमें ऑक्सीजन शरीर के अन्दर आती है तथा अपशिष्ट कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकलती है। सबसे अधिक मनोरंजक बात यह है कि पोषक प्रक्रियाओं में होने वाली अनेक रासायनिक अभिक्रियायें समस्त जीवों में उदाहरणतः खटमल, मेंढक, बाघ अथवा मनुष्य में मूलतः एकसमान होती हैं। रासायनिक प्रक्रियाओं की जो शृंखला जीवाणुओं में देखी जाती है प्रायः वही मनुष्य में भी होती है जो आदि काल से उनमें संरक्षित है। जीवों में होने वाली रासायनिक अभिक्रियायों को जैव रासायनिक अभिक्रिया कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है: (1) **अपचय** (Catabolism) (2) **उपचय** (Anabolism)। पहली प्रक्रिया में जटिल अणु टूट कर सरल बन जाते हैं तथा दूसरी में सरल अणु से जटिल अणु बनते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं को मिलाकर **उपापचय** कहते हैं।

हरे पौधे उसका उपयुक्त उदाहरण है जो सरल पदार्थों से जटिल पदार्थ बनाते हैं। वे ऐसा सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा लेकर करते हैं इसी लिए इस प्रक्रिया को **प्रकाश संश्लेषण** (Photosynthesis) कहते हैं। आइए इस प्रक्रिया के विषय में विस्तार से पढ़ें।

18.2 प्रकाश संश्लेषण

हरे पौधों में प्रकाश संश्लेषण भोजन बनाने की प्राथमिक विधि है। कार्बन तथा हाइड्रोजन के आक्साइड (CO_2 तथा H_2O) सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा लेकर पौधों की कोशिकाओं में कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज) के रूप में स्थिर हो जाते हैं। प्रकाश संश्लेषण का रासायनिक समीकरण नीचे दिया गया है।



$$6\,CO_2 + 6\,H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{प्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2$$

कार्बनडाई आक्साइड, पानी, क्लोरोफिल, ग्लूकोज, आक्सीजन

पौधों में न केवल कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) तथा पानी (H_2O) ही कार्बोहाइड्रेट रूप में स्थिर होते हैं बल्कि सूर्य से प्राप्त ऊर्जा भी स्थिर होती है। इसका अर्थ यह है कि हम सब प्रतिदिन भोजन में अप्रत्यक्ष रूप में सूर्य का प्रकाश ग्रहण करते हैं। क्योंकि पौधे सूर्य के प्रकाश को भोजन के रूप में स्थिर करते हैं। प्रत्यक्षरूप से जन्तु अपना भोजन पौधों और उनके उत्पादों से प्राप्त करते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से जब वे अन्य जन्तुओं को खाते हैं क्योंकि ये जन्तु भी तो पौधों पर ही निर्भर होते हैं। पौधे सूर्य के प्रकाश को परिवर्तित करके कार्बनिक पदार्थ के रूप में इकट्ठा करते हैं। हम इन पदार्थों को अपने भोजन में लेते हैं। हवा में ऑक्सीजन भी अधिकतर पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से आती है। पृथ्वी पर पौधों के आने से पहले हवा में ऑक्सीजन की मात्रा न के बराबर थी। वायु में ऑक्सीजन की मात्रा पौधों के पृथ्वी पर आने तथा उनकी प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया से ही अधिक हुई है। यह प्रक्रिया 280 करोड़ वर्ष पहले आरम्भ हुई थी। वायु में आक्सीजन होने से ही उच्च जन्तुओं का उदय हुआ तथा उन्होंने वृद्धि की।

प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ

पौधे अपना भोजन चार पदार्थों कार्बन-डाइआक्साइड, पानी, क्लोरोफिल और सूर्य के प्रकाश से बनाते हैं।

कार्बन डाइआक्साइड

आप जानते हैं कि श्वसन क्रिया में कार्बन डाइआक्साइड निकलती है। पौधे इस कार्बन डाइआक्साइड का उपयोग करने की क्षमता रखते हैं। वे इसे अपना भोजन बनाने के लिए उपयोग करते हैं। स्थलीय पौधे वायु मण्डल से कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं जबकि जलीय पौधे पानी में घुली हुई कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं। दिन के समय जब प्रकाश उपलब्ध रहता है, तब पौधे प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइ आक्साइड का उपयोग करके उसको स्थिर कर देते हैं। रात के समय वे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं करते बल्कि संचित स्टार्च का उपापचयन करते हैं और कार्बनडाइआक्साइड़ छोड़ते हैं। जब प्रकाश संश्लेषण की दर कम होती है जैसे छाया में या उषा काल या सायंकाल, तब श्वसन में निकली कार्बन डाइआक्साइड प्रकाश संश्लेषण क्रिया के लिए पर्याप्त होती है। यह अवस्था जिसमें कार्बन डाइ आक्साइड का अंतर्ग्रहण नहीं होता संतुलन प्रकाश तीव्रता (Compensation point) कहलाती है।

जल

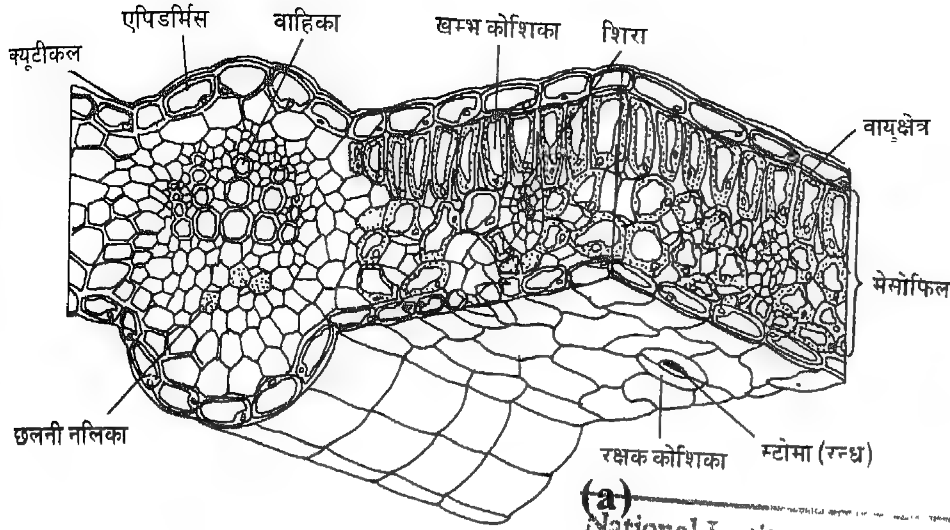
आप देखते हैं कि किसान अपनी फसलों को पानी देते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं। पौधों की जड़ें इस पानी को अवशोषित करती हैं और जाईलम द्वारा पत्तियों तक पहुंचा देती हैं। पौधे पानी के साथ-साथ अधिकांश खनिज लवण भी अवशोषित करते हैं। खनिज लवण भी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को पूरा करने में अपना योगदान देते हैं।

क्लोरोफिल (Chlorophyll)

क्लोरोफिल पत्तों में हरे रंग का वर्णक है। इसके चार घटक हैं। क्लोरोफिल ए, क्लोरोफिल बी, कैरोटिन तथा जैंथोफिल। इनमें से क्लोरोफिल ए और बी हरे रंग के होते हैं और ऊर्जा स्थानांतरित करते हैं। क्लोरोफिल प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक है। इसलिए जिन कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है उन्हीं कोशिकाओं को प्रकाश संश्लेषी कहते हैं। पौधों में क्लोरोफिल अधिकतर पत्तों में पाया जाता है इसलिए पत्तों को प्रकाश संश्लेषी अंग कहते हैं। पत्तों की कुछ कोशिकाओं में क्लोरोप्लास्ट नाम का अंगक होता है जिसमें क्लोरोफिल पाया जाता है। क्लोरो-प्लास्ट को पौधे का प्रकाश संश्लेषी अंगक कहते हैं। छोटे हरे तनों तथा फलों में अधिकतर पर्याप्त मात्रा में क्लोरोफिल होता है। अन्य अंगों में भी क्लोरोफिल होता है। शैवाल का लगभग सारा पौधा ही प्रकाश संश्लेषी है।

प्रकाश

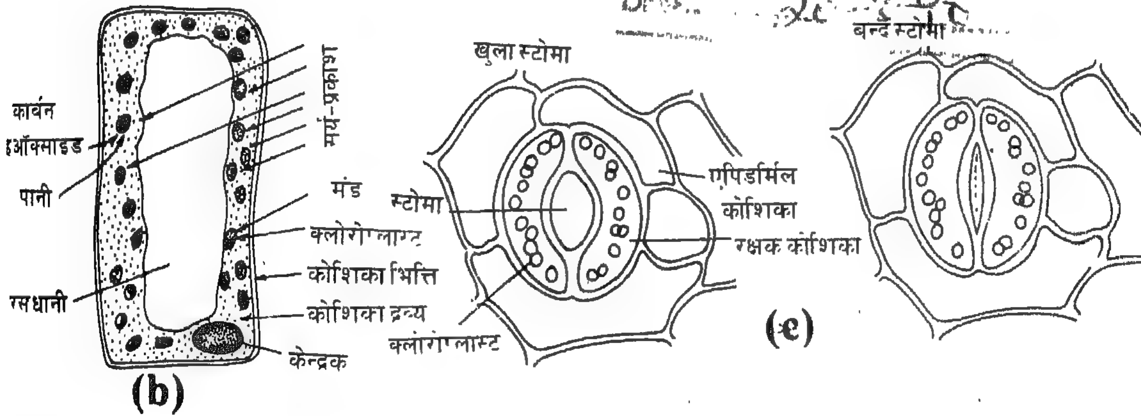
प्रकाश संश्लेषण मे सूर्य प्रकाश का प्राकृतिक स्रोत है, परन्तु कुछ कृत्रिम स्रोत भी इस क्रिया को करने में समर्थ होते हैं। क्लोरोफिल प्रकाश में से बैंगनी, नीला तथा लाल रंग को ग्रहण करता है। परन्तु प्रकाश संश्लेषण की दर लाल प्रकाश में



चित्र 18.1 (a) पत्ती की काट।

चित्र 18.1 (b) खंभ कोशिका।

चित्र 18.1 (c) रन्ध्र (स्टोमैटा)।



सबसे अधिक होती है।

चित्र 18.1 में पत्ते की काट को दर्शाया गया है। मोमी क्यूटीकल तथा पतली सी एपिडर्मिस (Epidermis) पत्ते के बाहरी भाग को बनाते हैं। प्रकाश संश्लेषण खंभ कोशिकाओं (Palisade cells) में होता है जिसे चित्र 18.1b में दर्शाया गया है। पानी शिरा से परासरण द्वारा और कार्बन डाइ आक्साइड वायुमंडल से विसरण द्वारा कोशिकाओं में जाती है। सूर्य के प्रकाश को क्लोरोफिल ग्रहण करता है। इस ऊर्जा से तथा

कई एंजाइम की सहायता से कार्बन डाइआक्साइड तथा पानी क्लोरोप्लास्ट में मिलकर शर्करा बनाते हैं। इस अभिक्रिया में पत्ते की कोशिका से ऑक्सीजन निकल कर वायु-मण्डल में जाती है। कुछ एंजाइम स्टार्च पर क्रिया करके भी शर्करा बनाते हैं, जैसे सुक्रोस। यह शर्करा फ्लोएम द्वारा पौधों में उपापचय तथा संचयन के लिए भेजा जाता है। प्रकाश संश्लेषण के अध्ययन के लिए यहाँ कुछ सरल क्रिया कलाप दिए गए हैं। क्रिया कलाप ऐसे पौधों से आरम्भ करना लाभदायक होता है जिनमें स्टार्च कम हो। इससे आप स्टार्च के उत्पादन का भी आसानी से परीक्षण कर सकेंगे। पत्ती को स्टार्च रहित करने के लिए पौधों को तीन दिन के लिए अंधेरे में रखा जाता है।

क्रियाकलाप – 1

सूर्य के प्रकाश में रखे हुए पौधों से एक पत्ता तोड़िए। इसको कुछ मिनट उबलते हुए पानी में डालिए। इससे पत्ते में स्थित एंजाइम नष्ट हो जाएंगे तथा पत्ता नर्म और अधिक उदग्रहित हो जाएगा। अब पत्ते को एल्कोहल में डालकर जल कुंडिका में उबालिए ताकि पत्ते में से सारा क्लोरोफिल निकल जाये और पत्ता सफेद हो जाए। इससे रंगों को आसानी से देखा जा सकता है। पत्ते को पुनः नर्म करने के लिए गर्म पानी में डालिये। आयोडीन के घोल की कुछ बूंदे पत्ते पर डालिये। पत्ते के जिस भाग में स्टार्च होगा वह आयोडीन से नीला हो जाएगा। अगर पत्ते में स्टार्च नहीं है तो पत्ता भूरे रंग का हो जाएगा। एक स्टार्च रहित पत्ते को तुलना के लिए रखिये।

क्रियाकलाप – 2

प्रकाश की आवश्यकता के लिए परीक्षण

एक स्टार्च रहित पौधा लें। इसके एक पत्ते को कार्बन पेपर से ढक दें। जिससे इस पत्ते पर प्रकाश न पड़े। पौधे को 6 घण्टे के लिए सूर्य के प्रकाश में रख दें। अब ढके हुए पत्ते को स्टार्च के लिए टैस्ट करें जैसा क्रियाकलाप 1 में किया था। जिस पत्ते को सूर्य का प्रकाश नहीं मिला है उसमें बहुत कम स्टार्च होगा, जबकि दूसरा पत्ता स्टार्च होने का प्रमाण दिखाएगा।

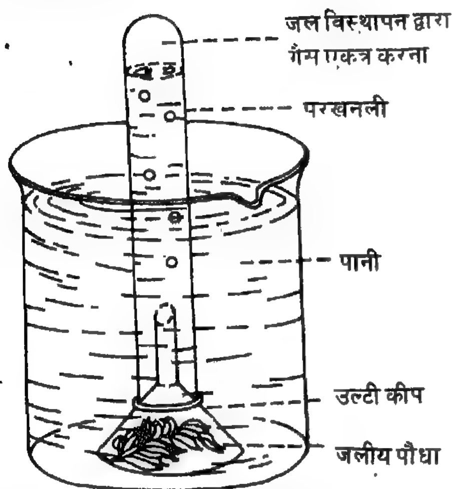
क्रियाकलाप – 3

स्टार्च रहित पौधे वाले दो गमले लें और उन्हें प्लास्टिक की थैली से ढक दें। ऐसा करने से पौधों को प्रकाश तो मिल जाएगा लेकिन ताजी हवा नहीं मिल पाएगी। एक में कुछ सोडा लाइम रख दें। सोडा लाइम कार्बन डाइआक्साइड को अवशोषित कर लेता है। दूसरे में सोडियम बाइकार्बोनेट ($NaHCO_3$) का घोल रखें। ऐसा करने से इस पौधे को अधिक कार्बन डाइ आक्साइड मिलेगी। दोनों गमलों को 6 घण्टों के लिए सूर्य के प्रकाश में रख दें। दोनों पौधों का एक एक पत्ता लेकर स्टार्च के लिए टैस्ट करें। जिस पौधे में सोडा लाइम रखा था उसके पत्ते में स्टार्च नहीं होगा क्योंकि इस पौधे को कार्बन डाइआक्साइड नहीं मिली।

क्रियाकलाप – 4

इस क्रियाकलाप द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीजन एक उपोत्पाद के रूप में निकलती है। एक बीकर, फ़नल, जलीय पौधा (हाईड्रिला), परख नली, पानी और थोड़ा बेकिंग सोडा लें। बीकर को पानी से आधा भर दें। हाईड्रिला की कुछ टहनियाँ इसमें रख दें। पौधे को फनल से ढक दें। परख नली को भी पानी से

भर दें। पानी से भरी हुई परख नली को फलन की डंडी पर रख दें। जैसा चित्र 18.2 में दिखाया गया है। इस उपकरण को सूर्य के प्रकाश में रख दें। कुछ देर के बाद आप बुलबुले निकलते हुए देखेंगे। जो परख नली के ऊपरी भाग में एकत्र हो जाते हैं। पानी का स्तर परख नली से नीचे आ गया है। टैस्ट करने पर पता चलेगा कि परख नली की गैस ऑक्सीजन है।

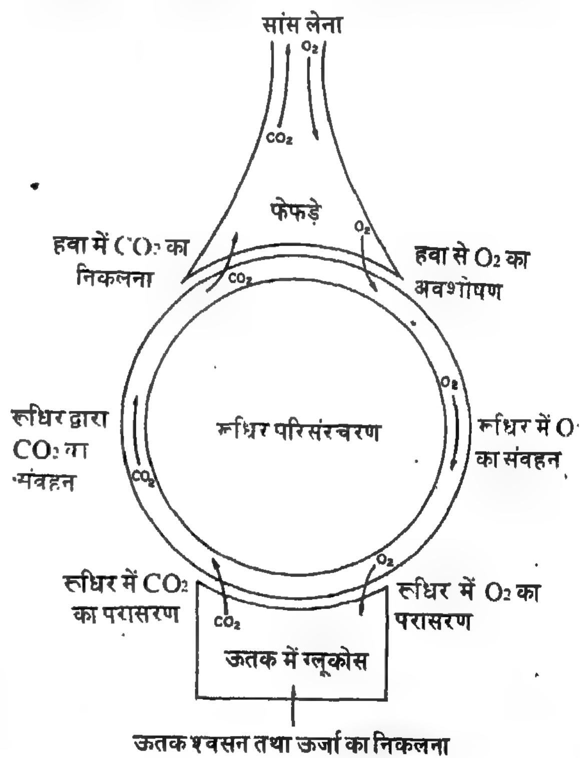


चित्र 18.2 प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीजन के निकलने को दिखाने के लिए एक प्रयोग।

नोट: यदि पौधे से बुलबुले निकलने की दर कम हो तो पानी में थोड़ा सा बेकिंग सोडा डाल सकते हैं।

श्वसन

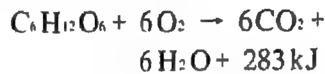
प्रकाश संश्लेषण में प्रकाशिक ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में बदलती है और कार्बोहाइड्रेट जैसे ग्लूकोस तथा स्टार्च के रूप में एकत्रित होती है। इन योगिकों के टूटने तथा रासायनिक ऑक्सीकरण से पर्याप्त ऊर्जा निकलती है जिसका उपयोग जीव करते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीकरण से ऊर्जा निकलती है तथा यह अभिक्रिया ऑक्सीजन अन्दर लेने के दौरान होती है। इस प्रक्रिया में उत्पादित कार्बन डाइआक्साइड सांस द्वारा बाहर छोड़ी जाती है। इस प्रक्रिया में जो यौगिक आक्सीकृत होते हैं उन्हें श्वसनी पदार्थ कहते हैं। श्वसनी पदार्थों से सारी ऊर्जा एकसाथ नहीं निकलती है, बल्कि धीरे-धीरे एक के बाद एक होने वाली रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा निकाली जाती है



चित्र 18.3 श्वसन में मनुष्य के शरीर में मूलभूत प्रक्रियाएँ होती हैं।

जिन्हें श्वसन की अपचय अभिक्रिया कहते हैं। श्वसन के दौरान ऊर्जा उसी प्रकार प्राप्य है जैसा कि किसी भी ऑक्सीकरण अभिक्रिया से प्राप्य है।

श्वसन को प्रकाश संश्लेषण के विपरीत समझा जाता है। प्रकाश संश्लेषण उपचय है और श्वसन अपचय। श्वसन की इस अभिक्रिया को नीचे दिया गया है।



$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \rightarrow 6CO_2 + 6H_2O + 283\,kJ$$

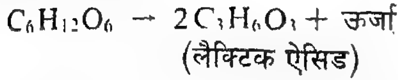
चित्र 18.3 में मनुष्य के शरीर में श्वसन के दौरान प्रमुख प्रक्रियाओं को दिखाया गया है।

पौधे प्रकाश और अंधेरे में संश्लेषण और श्वसन दोनों ही करते हैं। परंतु जिस दर से यह प्रक्रियायें होती हैं वह प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर करता है। ये दोनों प्रक्रियाएं सांध्य प्रकाश में एक दूसरे को संतुलित करती हैं। इसलिए ऊपर हमने संतुलन प्रकाश तीव्रता के विषय में बताया था।

क्या श्वसन और सांस लेने की प्रक्रियाएं एक समान होती हैं? श्वसन तथा सांस लेने की क्रिया भिन्न-भिन्न हैं। सांस लेना एक भौतिक क्रिया है। सांस लेने में निश्वसन के समय जीव वातावरण से ऑक्सीजन लेता है जो फेफड़ों में जाती है जहां से वह रक्त द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। उच्छवसन में कार्बन डाइ ऑक्साइड तथा पानी की वाष्प बाहर निकलती हैं। सांस लेने की प्रक्रिया अधिकतर उच्च वर्गीय जीवों में होती है। छोटे तथा सूक्ष्मदर्शी जन्तुओं में सांस लेने के लिए हमारी तरह नाक तथा फेफड़े नहीं होते हैं। वे ऑक्सीजन तथा अन्य गैसें विसरण द्वारा लेते हैं। श्वसन में रासायनिक ऑक्सीकरण क्रिया ऑक्सीजन का प्रयोग करते हुए होती है। इसमें सांस लेने वाले अंगों जैसे नाक तथा फेफड़ों की आवश्यकता नहीं होती है। यहां तक कि सूक्ष्मदर्शी जीव भी श्वसन करते हैं। जैव ऑक्सीकरण के नियम सभी जीवों के लिए चाहे वे जीवाणु हों या मनुष्य एक समान हैं। यद्यपि जीवों में रचनात्मक विविधता होती है परन्तु श्वसन क्रिया सभी में एक समान है। श्वसन जीवों में प्रकार्यात्मक एकता का एक अन्य उदाहरण है।

श्वसन में यौगिकों का ऑक्सीकरण होता है और ऊर्जा निकलती है। हमें ऊर्जा ऊष्मा के रूप में तब भी मिलती है जब किसी यौगिक को हवा में जलाकर उसका ऑक्सीकरण किया जाता है। तब क्या श्वसन और दहन एक ही प्रक्रिया हैं? दहन में वायु की ऑक्सीजन यौगिक से संयोग करती है और इसमें एक ही चरण में सारी ऊर्जा निकल जाती है। इससे ताप तथा प्रकाश के रूप में ऊर्जा की हानि हो जाती है। ईंधन के जलने से कार्बन डाइ आक्साइड तथा पानी बनते हैं। दूसरी ओर श्वसन में ऊर्जा धीरे धीरे निकलती है। यह ऊर्जा एडिनोसिन ट्राइफोस्फेट (ATP) जैसे विशेष यौगिक में संचित हो जाती है। ATP के जल अपघटन द्वारा आवश्यकतानुसार इस संचित ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार ATP जैव कोशिकाओं में रासायनिक ऊर्जा का सार्विक वाहक है। दहन उच्च ताप पर होता है जबकि श्वसन $25°—40° C$ जैसे सामान्य ताप पर हो सकता है। जैव ऑक्सीकरण में उपयोग होने वाले श्वसन पदार्थ हैं ग्लूकोस, वसा, ऐमीनो ऐसिड और प्रोटीन। इनमें से ग्लूकोस नामक यौगिक का उपयोग प्रायः श्वसन में होता है। ऑक्सीकरण तथा ग्लूकोस के सरलीकरण की सभी अभिक्रियाएं दो चरणों में पूरी होती हैं। पहले चरण में ऑक्सीजन की

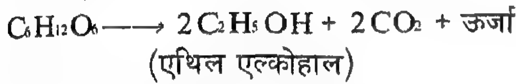
आवश्यकता नहीं होती है। इस अभिक्रिया में केवल थोड़ी सी ही ऊर्जा निकलती है। इस चरण में ग्लूकोस आंशिक रूप से लैक्टिक ऐसिड या एथिल ऐल्कोहॉल में टूटता है। ऐसे श्वसन को अनऑक्सी श्वसन कहते हैं।



$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_3H_6O_3 +$ ऊर्जा

(लैक्टिक ऐसिड)

(यह अभिक्रिया पेशीयों में तथा जीवाणु में होती है)



$C_6H_{12}O_6 \longrightarrow 2C_2H_5OH + 2CO_2 +$ ऊर्जा

(एथिल एल्कोहाल)

(यह अभिक्रिया यीस्ट में होती है)

श्वसन का दूसरा चरण आक्सीकरण की उपस्थिति में होता है इसलिए इसे ऑक्सी श्वसन कहते हैं। इसमें शर्करा के अणु जो अनआक्सी चरण में आधे टूटे थे पूरी तरह से ऑक्सीकृत हो जाते हैं। इससे कार्बन डाइ ऑक्साइड और ऊर्जा बाहर निकलती है। इस अभिक्रिया में अधिक मात्रा में ऊर्जा निकलती है। ग्लूकोस का एक अणु ATP के 38 अणु देता है।

श्वसन में हम ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन डाइ ऑक्साइड छोड़ते हैं। जो वायु हम लेते हैं उसमें ऑक्सीजन की मात्रा अधिक होती है और जो बाहर निकालते हैं उसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा अधिक होती है।

तालिका 18.1 में यह दर्शाया गया है।

तालिका 18.1

श्वसन में वायु का संघटन

	अन्दर ली हुई वायु	बाहर निकाली हुई वायु
नाइट्रोजन	79%	79%
ऑक्सीजन	21%	17%
कार्बन डाइ ऑक्साइड	0.03%	4%
पानी की वाष्प	परिवर्तनीय	संतृप्त

सांस द्वारा हमारे शरीर से लगभग 400 ml पानी प्रतिदिन निकलता है।

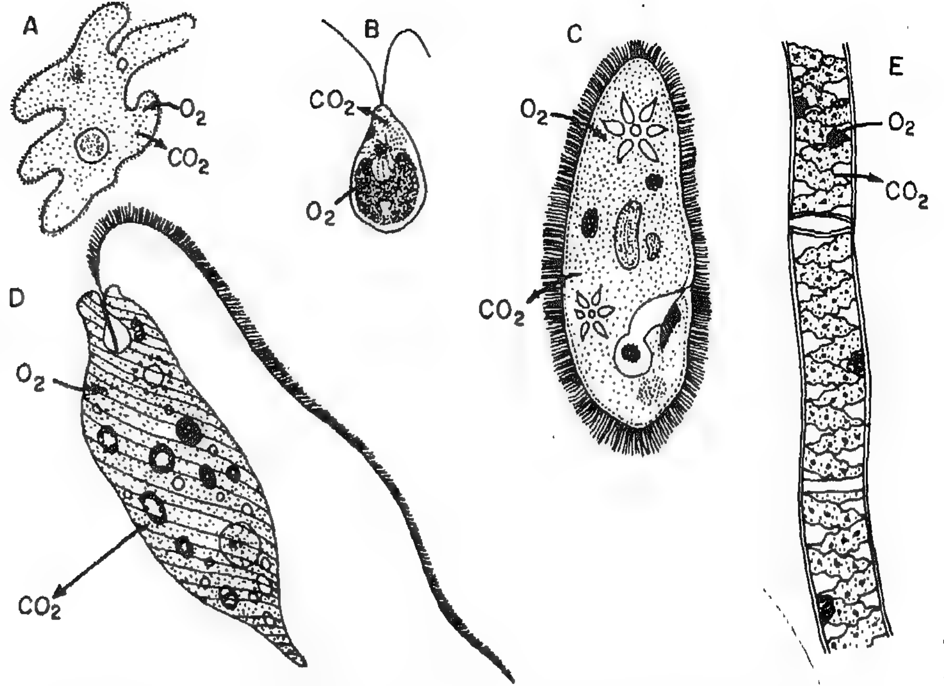
श्वसन की समस्त क्रियाएं कोशिका में होती हैं और ये क्रियाएं अनेकों एंजाइम के माध्यम से पूर्ण होती हैं। इनमें से अधिकांश एंजाइम माइटोकॉन्ड्रिया में स्थित होते हैं। माइटोकॉन्ड्रिया थैले की आकृति के होते हैं। यह सभी जीवित कोशिकाओं में पाये जाते हैं। इसे कोशिका का शक्ति केन्द्र भी कहते हैं क्योंकि ये श्वसन की सारी ऑक्सीकारक अभिक्रियाएं करते हैं और ऊर्जा प्रदान करते हैं।

वायु से ऑक्सीजन लेने तथा श्वसन कोशिका से कार्बन डाइ ऑक्साइड निकालने की भिन्न-भिन्न विधियां हैं। पौधों में यह विधि बहुत सरल है। इनमें हवा, स्टोमेटा, लैंटिसेल, तथा अन्तर कोशिकीय स्थानों से विसरित होती है। पानी में निमग्न पौधों तथा छोटे जानवरों में हवा शरीर से विसरित होती है। चित्र 18.4 में इन जीवों के कुछ उदाहरण दिखाए गए हैं।

उच्च वर्गीय जीवों में गैस विनिमय सांस लेने की विशेष प्रक्रिया से होता है। विभिन्न जन्तुओं में सांस लेने के विभिन्न अंग पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए मछली गिल द्वारा श्वसन करती है तथा स्थलीय जन्तु फेफड़ों तथा नासिका द्वारा श्वसन करते हैं।

18.4 पदार्थों का संवहन

भोजन और पाचित पदार्थों को अवशोषण के स्थान से उपयोग के स्थान तक पहुँचाना आवश्यक है। अपशिष्ट पदार्थों को भी शरीर से बाहर निकालना आवश्यक है। भिन्न-भिन्न जीवों में सवहन की



चित्र 18.4 बहुत से निम्नवर्गीय जीव विसरण प्रक्रिया द्वारा ऑक्सीजन लेते हैं। जैसे— (a) अमीबा, (b) क्लैमिडोमोनास, (c) पैरामीशियम, (d) यूग्लीना, (e) स्पाइरोगाइरा।

विधियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। परन्तु सभी जीव कुछ सामान्य नियमों का पालन करते हैं। आइये हम इनमें से कुछ के विषय में जानें।

एक कोशिकीय जीवों जैसे **क्लैमिडोमोनास**, शैवाल, **अमीबा**, **पैरामीशियम** तथा कुछ बहु-कोशिकीय जीवों जैसे हाइड्रा में पदार्थों का संवहन मुख्यतः विसरण विधि द्वारा होता है। विसरण की प्रक्रिया में अणु सान्द्र क्षेत्र से तनु क्षेत्र की ओर जाते हैं और यह प्रक्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि सांद्रता एकसमान न हो जाए। पदार्थों का विसरण ठोस तथा द्रव की अपेक्षा गैसीय स्थिति में अधिक होता है। प्रकाश संश्लेषण में पत्तियों में कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग कोशिका द्रव्य में होता है जिससे कार्बोहाइड्रेट बनता है। इस कारण कोशिका में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर कम हो जाता है तथा हवा और अन्तर कोशिकीय स्थानों के बीच विसरण प्रवणता बनती है। इसके परिणाम स्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड वातावरण से कोशिका में विसरित होती है। प्रकाश संश्लेषण में ऑक्सीज़न गैस उत्पन्न होती है और ऑक्सीजन की प्रवणता कार्बन डाइऑक्साइड से विपरीत दिशा में बनती है। इसके परिणाम स्वरूप

ऑक्सीजन पत्तों से निकल कर हवा में विसरित हो जाती है। विसरण सभी दिशाओं में होता है। जितना क्षेत्रफल अधिक होगा विसरण भी उतना ही अच्छा होगा। अब आप समझ गए होंगे कि पत्ते का क्षेत्रफल अधिक होने से क्या लाभ हैं। परासरण विसरण की एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में अणु तनु घोल से सांद्र घोल की ओर अर्धपरागम्य झिल्ली की सहायता से जाते हैं।

संवहन की क्रिया विधि उच्च वर्गीय जन्तुओं में अधिक जटिल होती है। इसका कारण यह है कि उनकी आवश्यकता अधिक होती है जो कि विसरण से पूरी नहीं हो पाती। इनमें संवहन करने की विशेष नालियाँ तथा संवहन वाहिकाएं होती हैं। पौधों में यह नालियां जाइलम तथा फ्लोएम के रूप में होती हैं। उच्च वर्गीय जन्तुओं में परिसंचरण तंत्र होता है। इस तंत्र में रुधिर पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है तथा हृदय एक पंप की तरह कार्य करता है। दाब उत्पन्न करने के लिए आइये हम पहले पौधों में संवहन तंत्र के विषय में पढ़े।

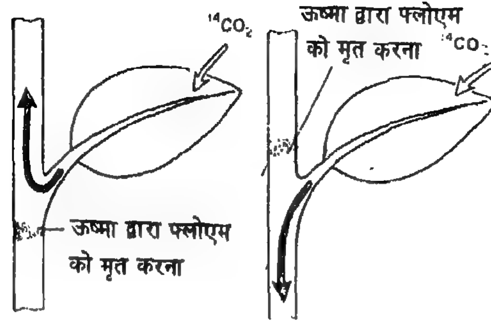
पत्ते की निचली सतह पर विशेष प्रकार के छिद्र होते हैं जिन्हें स्टोमेटा कहते हैं। स्टोमेटा के दोनों ओर दो रक्षक कोशिकाएं होती हैं। आंतरिक दाब या स्फीति दाब में परिवर्तन के कारण स्टोमा का आकार भी बदलता रहता है। इनका साइज कभी कम होता है तो कभी अधिक और कभी ये बिल्कुल बंद भी हो जाते हैं। प्रकाश की तीव्रता और पानी की हानि, ये दो कारक स्टोमेटा के खुलने तथा बंद होने पर नियंत्रण रखते हैं। चित्र 18.1c में स्टोमा का खुलना तथा बंद होना दिखाया गया है। पौधों में गैस विनिमय जैसे कार्बन डाइऑक्साइड अन्दर लेना तथा ऑक्सीजन बाहर निकालना स्टोमेटा के द्वारा होता है।

स्टोमेटा कैसे खुलता है और बन्द होता है? जैसे-जैसे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया आगे बढ़ती है पत्तों में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर गिरता जाता है और शर्करा का स्तर बढ़ता जाता है। शर्करा अधिक होने के कारण परासरण दाब या स्फीति दाब में परिवर्तन होता है। इससे रक्षक कोशिका मुड जाती हैं और स्टोमा खुल जाते हैं।

पौधों में पानी, घुली हुई शर्करा तथा अन्य पदार्थों का संवहन दो विधियों से होता है:

1. स्थानांतरण:– इससे घुले हुए पदार्थों का स्थानांतरण पौधों में होता है।
2. वाष्पोत्सर्जन:– इसमें पत्तों से पानी का वाष्पीकरण होता है जिसके कारण जाइलम से पानी का संवहन होता है। पानी तथा घुले हुए लवण प्रायः जाइलम के द्वारा मिट्टी से ऊपर की ओर जाते हैं। पत्तों में निर्मित भोजन फ्लोएम की चालनी नलिकाओं (Sieve tubes) से पौधों के अन्य भागों में जाता है। चित्र 18.5 में फ्लोएम द्वारा स्थानांतरण दिखाया गया है।

वाष्पोत्सर्जन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके कारण पेड़-पौधे पानी को वातावरण में छोड़ते हैं। पानी की हानि मुख्यतः पत्तियों द्वारा होती है। जब स्फीति दाब बढ़ता है तब पानी कोशिका भित्ती से बाहर निकल कर अन्तर कोशिकीय स्थानों में आ जाता है। यहां पर पानी से वाष्प बनती हैं जो स्टोमेटा द्वारा बाहर निकल



चित्र 18.5 फ्लोएम द्वारा संवहन का प्रमाण। प्रकाश संश्लेषण में उपयोग होने के लिए रेडियोधर्मी कार्बन डाइऑक्साइड पौधे को दी गई। जब किसी दिशा में स्थित फ्लोएम को गरम करके बन्द कर दिया गया तब देखा गया कि रेडियोधर्मी वाला उत्पाद विपरीत दिशा में स्थित फ्लोएम में चला गया।

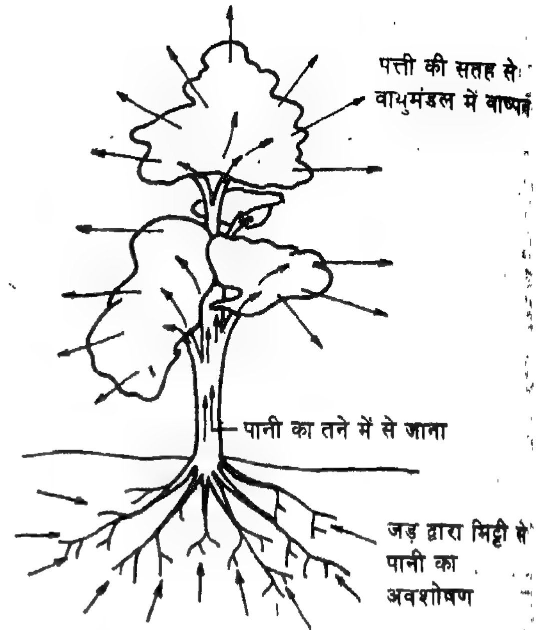
जाती है। जब स्टोमेटा बन्द होते हैं उस समय पानी की हानि बहुत कम होती है।

पानी में संवहन के कारण घुले हुए पदार्थ तथा पानी जड़ों तथा जाइलम द्वारा पौधे में ऊपर जाते हैं। पत्तियों से पानी के वाष्प बनकर उड़ने के कारण स्फीति दाब कम हो जाता है। इससे जाइलम नलिकाओं में एक अटूट स्तम्भ सा बन जाता है और यदि किसी समय दाब कम हो जाता है तो पानी का स्तर भी बदल जाता है जिसके कारण मिट्टी से पानी पौधे में ऊपर की ओर चढ़ता है। यह प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है जैसे ड्रापर में लगी रबर को दबाने से स्याही दवात से ड्रापर में चढ़ जाती है।

चित्र 18.6 में पौधे में वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया को दिखाया गया है।

18.5 रुधिर परिसंचरण

मनुष्य में पदार्थों का स्थानांतरण रुधिर



चित्र 18.6 वाष्पोत्सर्जन तन्त्र। जड़ें मिट्टी से पानी को अवशोषित करती हैं और जाइलम द्वारा तने तक पहुँचाती हैं। इसमें से कुछ पत्तियों की सतह से पानी वातावरण में वाष्पित हो जाता है।

परिसंचरण द्वारा होता है (चित्र 18.7)।

रुधिर तरल माध्यम है जिसके द्वारा पदार्थों का स्थानांतरण होता है। रुधिर में बहुत घटक होते हैं:–

(अ.) लाल रुधिर कोशिकाएं (Erythrocytes) –इनमें हीमोग्लोबिन नामक प्रोटीन अणु होता है। मनुष्य में ही हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड का वाहक होता है।

(ब.) श्वेत रुधिर कोशिकाएं (Leucocytes) –ये हानिकारक जीवाणुओं तथा मृत

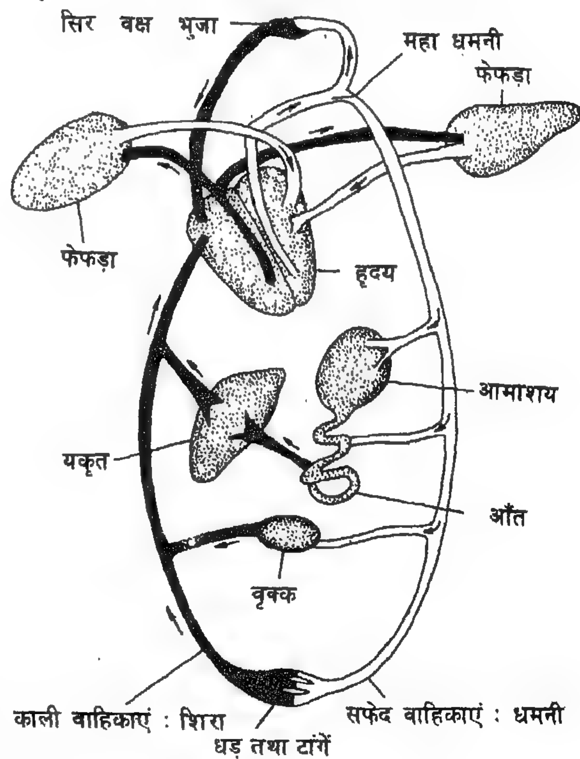
कोशिकाओं का अंर्तग्रहण करती हैं और उन्हें नष्ट कर देती हैं। ये कोशिकाएं किसी संक्रमण तथा घाव होने पर हमारे शरीर में रक्षा बल की तरह कार्य करती हैं।

(स.) पट्टिकाणु कोशिकाएं – ये रुधिर के थक्के जमा देती है जिससे मूल्यवान तरल रुधिर की हानि नहीं हो पाती।

(द.) प्लाज़्मा – यह रुधिर का तरल भाग है। इसमें बहुत से लवण, ग्लूकोस, ऐमीनो ऐसिड, प्रोटीन, हार्मोन तथा पाचित एवं अपाचित खाद्य पदार्थ घुले होते हैं। सीरम रुधिर प्लाज्मा है जिसमें से रुधिर के थक्के जमाने वाले फाइब्रिनोजन नामक प्रोटीन को निकाल लेते हैं। इस प्रकार रुधिर दो कार्य करता है (1) परिसंचरण तथा (2) शरीर के भीतरी वातावरण को संतुलित एवं स्थिर रखना।

रुधिर परिसंचरण तरल होने के कारण बहुत प्रकार के पदार्थों का संवहन करता है।

1. यह ऑक्सीजन को फेफड़ों से ऊतकों तक और
2. कार्बन डाइऑक्साइड को ऊतकों से फेफड़ों तक पहुँचाता है। लाल रुधिर कोशिकाओं में स्थित हीमोग्लोबिन फेफड़ों की सतह से विसरित ऑक्सीजन को ले लेता है और इसे कोशिकाओं में पहुंचा देता है जहां पर इसका उपयोग होता है। हीमोग्लोबिन खाद्य पदार्थों के ऑक्सीकरण से उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड को लेता है और उसे फेफड़ों में पहुंचा देता है जहां से विसरण विधि द्वारा यह शरीर से बाहर निकल जाती है।
3. रुधिर तंत्र की कोशिकाएं (और लसिका तंत्र) बहुत से उपापचयी अपशिष्ट पदार्थों तथा विषैले उपोत्पादों को उत्सर्जन के लिए वृक्क में ले जाती हैं।
4. छोटी आंत (इलियम) से पाचित पदार्थ रुधिर प्लाज्मा में आते हैं और यकृत में चले जाते हैं और उसके बाद परिसंचरण तंत्र में शामिल हो जाते हैं।
5. रुधिर हार्मोन जैसे रासायनिक पदार्थों को जो शरीर में उपापचयन, वृद्धि तथा विकास को नियमित करते हैं उत्पादन स्थलों से उपयोग करने वाले अंगों में पहुंचाता है।



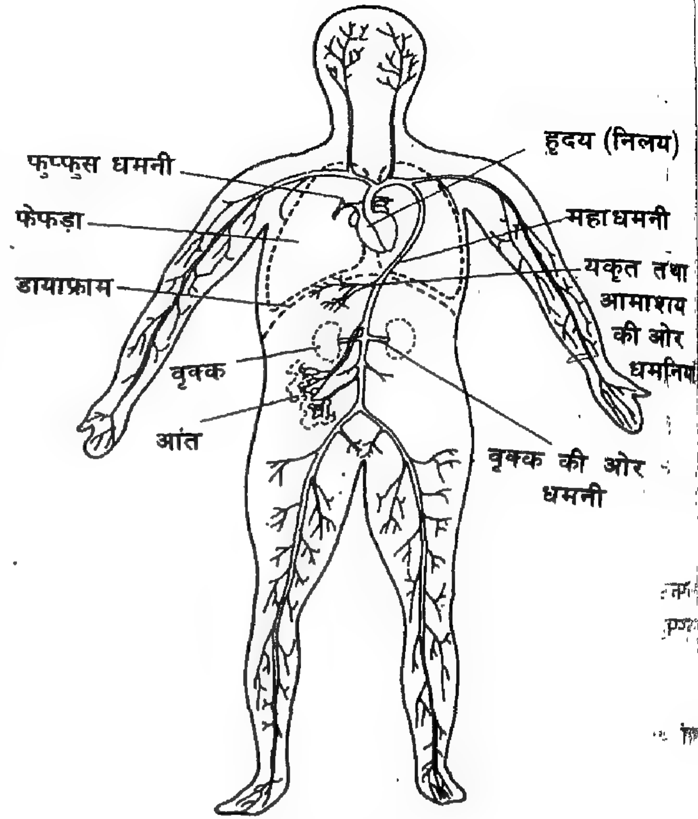
चित्र 18.7 मनुष्य में परिसंचरण तन्त्र।

6. परिसंचरण तरल ऊष्मा का वितरण कर शरीर के ताप को स्थिर रखता है।

7. रुधिर का थक्का जमाने वाला, घाव का उपचार करने वाला तथा संक्रमण एवं रोगों से लड़ने वाले पदार्थ भी रुधिर द्वारा ही स्थानांतरित होते हैं।

चित्र 18.7 से पता चलता है कि परिसंचरण एक पम्प द्वारा होता है। इस पम्प को हृदय कहते हैं। हृदय की पेशियों के आवर्तीय रूप से सिकुड़ने के कारण रुधिर निकलता है। रुधिर का बहाव सदैव एक ही दिशा में होता है जैसा कि चित्र में तीरों से दिखाया गया है। रुधिर वाहिकाएं विभिन्न साइज की होती हैं। इसके मोटी से मोटी वाहिका के व्यास का माप 1 cm से लेकर पतली वाहिका का 0.001 mm तक होता है। धमनी, शिरा तथा केशिका तीन प्रकार की रुधिर वाहिकाएं हैं। ये तीनों आपस में एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं जिस कारण एक बन्द प्रकार का तन्त्र या लूप सा बन जाता है। धमनी सबसे चौड़ी होती है और यह रुधिर को हृदय से शरीर के विभिन्न अंगों में पहुंचाती है। मनुष्य के धमनी तन्त्र को चित्र 18.8 में दिखाया गया है। धमनी विभक्त होकर पतली धमनिकाएं बनाती है। धमनिकाएं पुनः विभक्त होकर बहुत सी पतली केशिकाएं बनाती हैं।

केशिकाएं पतली वाहिकाएं होती हैं जिनकी भित्ति की मोटाई केवल एक कोशिका जितनी होती है। इनकी भित्ति पानी तथा छोटे-छोटे अणुओं, घुलित खाद्य पदार्थों तथा अपशिष्ट पदार्थों, ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड के लिए पारगम्य होती है जिनका केशिकाओं के आस पास

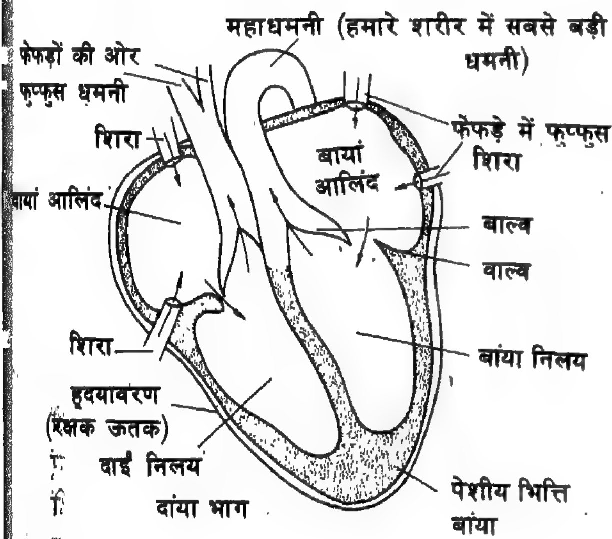


चित्र 18.8 मनुष्य में धमनी तन्त्र।

के ऊतकों में आदान प्रदान होता है। इन्हीं केशिकाओं के कारण फेफड़ों में स्थित कूपिकाएं हवा को लेती हैं तथा छोड़ती हैं और इन्हीं केशिकाओं के कारण ही यकृत में स्थित प्रत्येक केशिका रुधिर तथा पदार्थों के संवहन सम्पर्क में रहती हैं।

केशिकाएं आपस में जुड़कर लघु शिराएं बनाती हैं और अन्ततः शिरा बन जाती है। शिराएं रुधिर को वापिस हृदय में ले जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धमनियाँ हृदय से रुधिर को शरीर के अन्य ऊतकों में केशिकाएं द्वारा ले जाती हैं तथा शिराएं रुधिर को ऊतकों से हृदय में वापस लाती है। रुधिर का प्रवाह एक ही दिशा में रखने के लिए धमनी तथा शिरा में वाल्व होते हैं। रुधिर प्रवाह का दाब उन्हें उसी दिशा में खोल देता है जिस ओर उसे बहना होता है। धमनी के रुधिर में ऑक्सीजन तथा घुलित खाद्य पदार्थ होते हैं जबकि शिरा के रुधिर में कार्बन डाइऑक्साइड तथा अपशिष्ट पदार्थ होते हैं। फुप्फुस धमनी तथा फुप्फुस शिरा इसके दो अपवाद हैं। इसका कारण आप चित्र 18.9 से पता कर सकते हैं।



चित्र 18.9 *मनुष्य का हृदय तथा इसके भाग।*

चित्र 18.9 में हृदय दिखाया गया है यह एक पंम्प की तरह होता है जो रुधिर का सारे शरीर में परिसंचरण करता है। इसमें चार कोष्ठक होते हैं — दांया तथा बांया आलिंद और दांया तथा बांया निलय। दांया तथा बांया भाग कपाट द्वारा विभाजित होता है तथा एक दूसरे से सम्पर्क नहीं रखता है। ऑक्सीजन युक्त रुधिर फुप्फुस शिरा द्वारा बांए आलिन्द में आता है। यहां से रुधिर द्विकपाट वाल्व की सहायता से बाएं निलय में आता है। निलय से रुधिर महाधमनी द्वारा सारे शरीर में चला जाता है। इसी प्रकार ऊतकों से अशुद्ध रुधिर महाशिरा द्वारा दाएं आलिंद में आता है। यहां से रुधिर त्रिकपाट वाल्व द्वारा दाएं निलय में आता है। यहां से रुधिर फुप्फुस धमनी द्वारा फेफड़ों में पुनः ऑक्सीजन युक्त होने के लिए चला जाता है। आराम करते हुए एक वयस्क में हृदय की पम्प करने की दर 70 प्रति मिनट है। व्यायाम करने या उत्तेजित होने पर यह दर बढ़ कर 150 तक हो सकती है। नीचे दिए गए क्रिया-कलापों से आप इस दर को माप सकते हैं।

क्रियाकलाप — 5

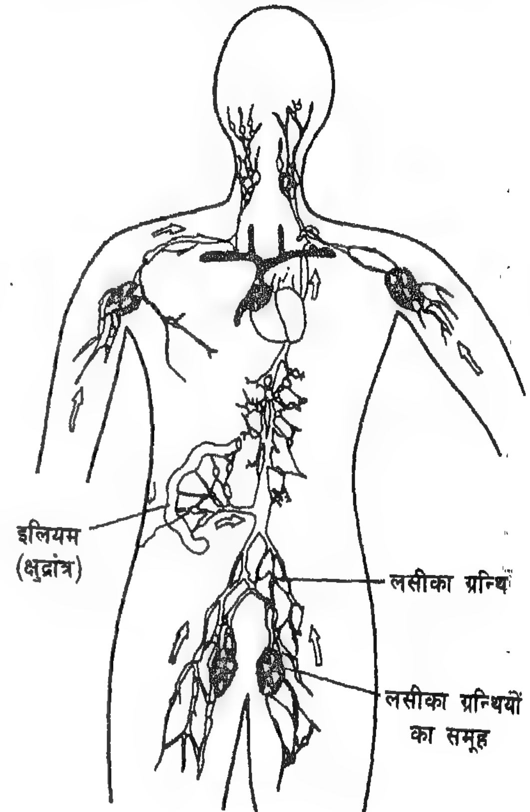
हृदय से रुधिर के पम्प होने को शरीर के कुछ भागों पर अनुभव किया जा सकता है। कलाई में स्थित रुधिर वाहिकाएं इस कार्य के लिए बहुत उपयुक्त हैं। अपनी बायीं कलाई को अपने दाएं हाथ से पकड़ें और जैसे डाक्टर करता है उसी प्रकार अपनी कलाई को दबाएं। आप कुछ स्पंदन अनुभव करेंगे। जब आप आराम की अवस्था में हो तब स्पंदन दर गिनें और व्यायाम (2 मिनट दौड़ने के बाद) करने के बाद गिनें। देखिये दर कितनी बढ़ती है? यह भी देखिये कि स्पंदन दर कितने समय में सामान्य होती है। प्रायः आराम की अवस्था में स्पंदन दर 70-100 प्रति मिनट होती है और यह दर उत्तेजित होने पर दोगुनी हो जाती है।

कोशिकाओं में रुधिर को पहुंचने के लिए हृदय में अधिक दाब होना आवश्यक है। प्रवाहित रुधिर के उस दाब के अभाव में कोशिकाएं वैसे ही चपटी रह जाएंगी जैसे बिना हवा के गुब्बारा। रुधिर का यह दाब शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न होता है। निलय जब सिकुड़ता है, रुधिर महाधमनी और फुप्फुस धमनी में चला जाता है तब एक सामान्य दाब उत्पन्न होता है। इस दाब को प्रकुंचन दाब कहते हैं।

प्रकुंचन दाब पारे के 120 mm स्तम्भ द्वारा बने दाब के बराबर होता है। इसके विपरीत की अवस्था अनुशिथिलन दाब होती है। इसमें रुधिर आलिंद से निलय में आता है। अनुशिथिलन दाब पारे के 80 mm स्तम्भ द्वारा बने दाब के बराबर होता है। आराम की अवस्था में एक वयस्क के स्वस्थ हृदय का दाब लगभग 120/80 होता है।

18.6 लसीका

शरीर में लसीका एक अन्य परिसंचरण तंत्र है। प्रोटीन के अणुओं का साइज बड़ा होने के कारण वह पुनः कोशिकाओं में प्रवेश नहीं कर सकते। इसीलिए प्रोटीन के अणु लसीका में आ जाते हैं और यहां से वे रुधिर परिसंचरण में आते हैं। लसीका का रंग हल्का पीला होता है। इसमें हीमोग्लोबिन नहीं होता इसलिए इसका रंग लाल नहीं होता है। परन्तु इसकी रचना लगभग रक्त प्लाज्मा जैसी ही होती है। लसीका ऊतक से हृदय की ओर केवल एक ही दिशा में बहता है। इसमें विशेष प्रकार की सफेद कोशिकायें होती हैं जिन्हें **श्वेत कणिकाएं** (Lymphocytes) कहते हैं। ये कणिकाएं संक्रमण तथा रोगों के कीटाणुओं को मार देती है। चित्र 18.10 में मनुष्य के शरीर में लसीका तन्त्र के मार्ग को दिखाया गया है।



चित्र 18.10 मानव शरीर में लसीका तंत्र

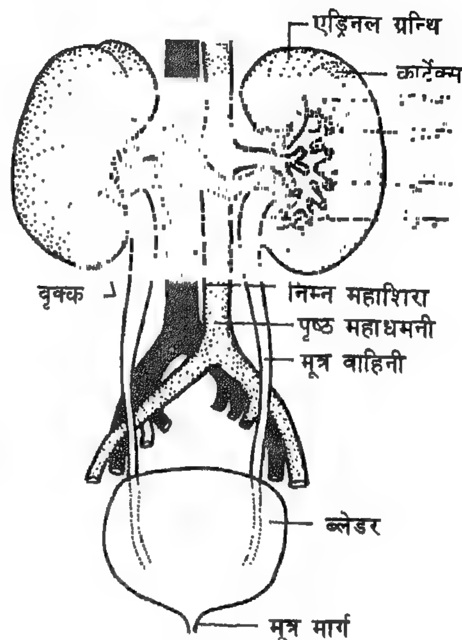
18.7 उत्सर्जन

भोजन के अंतर्ग्रहण तथा पाचन के बाद शरीर उपयोगी पदार्थों को विभिन्न ऊतकों तथा

कोशिकाओं में पहुंचाता है। अपाचित तथा अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने की आवश्यकता होती है। शरीर में उपापचय की क्रियाओं द्वारा इन अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने की प्रक्रिया को **उत्सर्जन** (Excretion) कहते हैं। गैस, तरल तथा ठोस पदार्थों का उत्सर्जित होना आवश्यक है, और इन में से प्रत्येक के उत्सर्जन की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। कार्बन डाइऑक्साइड सबसे प्रमुख अपशिष्ट पदार्थ है जिसे सांस द्वारा बाहर निकाला जाता है। श्वसन के समय कोशिकाओं में कार्बन डाइऑक्साइड रुधिर में स्थित हीमोग्लोबिन से मिलकर या पानी में घुलकर स्थानांतरित होती है। कार्बन डाऑक्साइड का निष्कासन फेफड़ों की सतह से होता है।

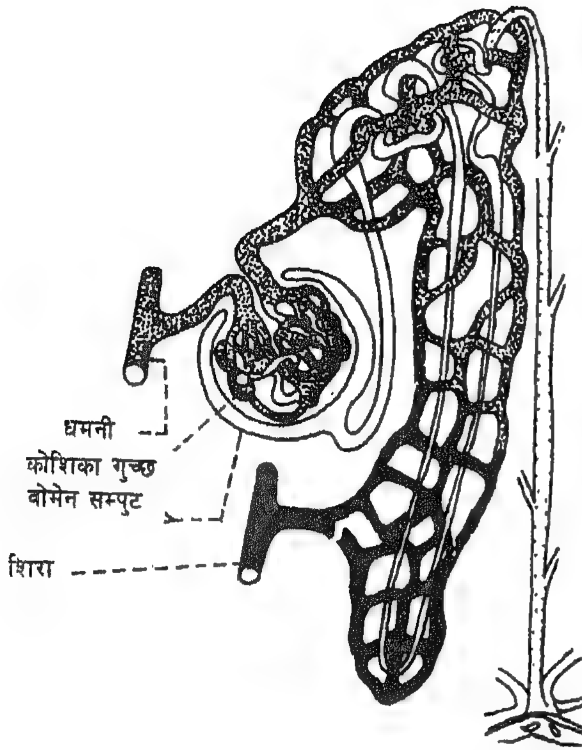
ठोस अपशिष्ट मुख्यतः भोजन का अपाचित भाग जैसे सब्जियों के रेशे (Roughage) होते है। स्मरण करें कि मुँह में भोजन का पाचन आरम्भ होता है तथा आमाशय में समाप्त होता है। पाचित भोजन पेट की भित्तियों द्वारा अवशोषित हो जाता है। अपाचित पदार्थ बड़ी आंत में आ जाता है और गुदा के रास्ते शरीर से निष्कासित हो जाता है। दिलचस्प बात यह है कि मुंह से लेकर गुदा तक एक ही रास्ता होता है।

अपशिष्ट तरल पदार्थों के उत्सर्जन के लिए एक जटिल क्रिया विधि की आवश्यकता होती है क्योंकि रुधिर में पोषक तत्व तथा अपशिष्ट पदार्थ दोनों ही होते हैं इसीलिए इनको छानने तथा अलग करने की विशेष विधि होती है। इस क्रिया से उपयोगी पदार्थ शरीर में ही रह जाते हैं और अपशिष्ट पदार्थ उत्सर्जित हो जाते हैं। यह क्रिया शरीर में स्थित वृक्कों द्वारा सम्पन्न होती है। शरीर में इनकी संख्या दो होती है। यदि इन में से एक वृक्क काम करना बन्द कर दे तो दूसरा वृक्क अकेले ही पूरा कार्य करता है।



चित्र 18.11(a) मनुष्य में वृक्क तथा उसकी सम्बन्धित संरचनाएं। दाएं वृक्क को आंशिक काटकर भीतरी संरचनाएं दिखाई गयीं हैं।

चित्र 18.11a में शरीर में वृक्क की स्थिति तथा वृक्क के कटे हुए एक भाग को दिखाया गया है। वृक्क-धमनी, महाधमनी से रुधिर लेकर वृक्क में पहुंचाती है। अपशिष्ट पदार्थ अलग करने के बाद साफ रुधिर वृक्क-शिरा द्वारा वापिस भेज दिये जाते हैं। वृक्क द्वारा अलग किए गए अपशिष्ट पदार्थ को मूत्र कहते हैं। मूत्र मूत्र-वाहिनी से मूत्राशय में जाता है और मूत्र मार्ग से उत्सर्जित हो जाता है।



चित्र 18.11 (b) *मनुष्य की केशिका जालियां तथा केशिका गुच्छ की रचना का विवरण।*

वृक्क सेम के आकार का होता है। वृक्क के भीतर वृक्क–धमनी कई लाख केशिकाओं में विभाजित हो जाती है। प्रत्येक केशिका पुनः बार-बार विभाजित होती है और कुंडलित हो जाती है। इन संरचनाओं को केशिका गुच्छ कहते हैं। इनकी भित्तियों से रुधिर छन जाता है। छना हुआ तरल या सीरम छोटे-छोटे प्यालों या बोमन संपुट में एकत्र हो जाता है। इस छने हुए तरल में ग्लूकोस, लवण तथा नाइट्रोजन के यौगिक होते हैं। प्रोटीन रुधिर में ही रह जाती है। इस प्रक्रिया को, जिसमें छोटे अणु छन कर बाहर आ जाते हैं तथा प्रोटीन जैसे बड़े अणु बाहर नहीं आ पाते, अपोहन (डायलिसिस) कहते हैं। वृक्क में स्थित केशिका गुच्छ डायलिसिस थैली का कार्य करता है।

मूत्र मार्ग में आने से पहले छना हुआ तरल बहुत ही महीन नलियों में से गुजरता है। इन नलियों में ग्लूकोस, तथा अन्य उपयोगी पदार्थ पुनः अवशोषित हो जाते हैं। अवशोषित पदार्थ वृक्क–शिरा में स्थित रुधिर मैं वापिस आ जाते हैं। अपशिष्ट तरल जिसे मूत्र कहते हैं निष्कासन के लिए मूत्राशय में आ जाता है। निम्न क्रिया कलाप से आपको डायलिसिस का सिद्धान्त तथा उसका उपयोग का पता लग जायेगा।

क्रियाकलाप–6

एक कोलोडियन (Collodion) या सेलोफोन की थैली लें। उसमें स्टार्च तथा नमक के घोल की समान मात्रा भरें। थैली के सिरे को धागे से बांध दें (जैसा की आप गुब्बारे में करते हैं) और थैली को आसुत जल से भरे बीकर में लटका दें। इसे कई घण्टे तक ऐसे ही रहने दें। इसके बाद बीकर वाले पानी का सोडियम क्लोराइड (सिल्वर नाइट्रेट का तनु घोल क्लोराइड की उपस्थिति में दूधिया हो जाएगा) तथा स्टार्च के लिए (आयोडीन डालकर) परीक्षण करें। आप देखेंगे कि सोडियम क्लोराइड के कण थैली से बाहर आ जाते हैं जब कि स्टार्च के नहीं। कोलोडियन थैली में छिद्र इतने बड़े थे कि उसमें से सोडियम तथा क्लोराइड के आयन आसानी से बाहर निकल आए, लेकिन वही छिद्र स्टार्च के बड़े अणुओं के लिए छोटे रह गए। कोलोडियन झिल्ली इस प्रकार अर्ध पारगम्य है और यह अणुओं के विशेष साइज का विभेदीकरण

करती है।

डायलिसिस सिद्धान्त का उपयोग कृत्रिम वृक्क बनाने में किया जाता है। यदि प्राकृतिक वृक्क खराब हो जाए तब डाक्टर उस वृक्क को निकाल देते हैं और किसी स्वस्थ मनुष्य द्वारा दान दिये गये दूसरे वृक्क को प्रतिरोपित कर देते हैं अथवा कृत्रिम वृक्क का उपयोग करते हैं। इसमें किसी एक धमनी से रोगी के रुधिर को एक सेलोफेन नली में लाते हैं। जो कि नमक के घोल में लटकी रहती है। यह नमक का घोल ऐसा बनाया जाता है कि इसका संघटन रुधिर प्लाज्मा के समान हो। जब रुधिर सेलोफेन नली में से गुजरता है तो अपशिष्ट पदार्थों के छोटे अणु जैसे अमोनिया तथा यूरिया नली से बाहर निकल कर घोल में आ जाते हैं और बड़े अणु जैसे प्रोटीन रुधिर में ही रह जाते हैं। इस प्रकार कई बार डायलिसिस करने के बाद साफ रुधिर को रोगी की शिराओं में वापिस भेज दिया जाता है।

प्रश्नावली

1. पोषण की परिभाषा दीजिए। पोषण के विभिन्न प्रकार क्या हैं?
2. परपोषी जीव किस प्रकार स्वपोषी जीवों पर निर्भर करते हैं?
3. निम्नलिखित में अंतर बताइए:
   (अ) मृतजीवी तथा परजीव पोषण
   (ब) प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन
   (स) आक्सी तथा अनाक्सी श्वसन
4. मुंह से लेकर कोशिका में अवशोषित होने तक भोजन में जो परिवर्तन होते हैं उनके विभिन्न पाचन चरण लिखिये।
5. प्रकाश संश्लेषण में संतुलित प्रकाश तीव्रता क्या है?
6. क्या श्वसन तथा सांस लेना एक ही क्रिया है? यदि नहीं, तो क्यों नहीं? क्या श्वसन तथा जलना एक ही क्रिया है? यदि नहीं, तो क्यों नहीं?
7. पत्तियों में स्थित स्टोमेटा का खुलना तथा बन्द होना कैसे नियमित होता है?
8. ऊंचे-ऊंचे वृक्षों में पानी ऊपर कैसे चढ़ जाता है?
9. चित्र 18.5 देखो जिसमें रेड़ियो धर्मी कार्बन डाइआक्साइड को रेडियो धर्मी स्टार्च में स्थिर किया गया है। क्या आप बता सकते हैं कि इसमें स्टार्च बनाने के लिए कार्बन डाइआक्साइड कार्बन के स्रोत के रूप में काम करता है अथवा ऑक्सीजन के? इसे समझाइये।

10. रेखाचित्र द्वारा निम्न चरणों को दर्शाइये—
    (1) ग्लूकोस के अणु उस समय से जब यह छोटी आंत (इलियम) में अवशोषण लिए तैयार हैं, और
    (2) फेफड़ों में ऑक्सीजन अणु का अवशोषण, उस समय तक जब ये दोनों टांग की पेशी कोशिका में पहुंचते हैं।
11. रुधिर के कौन-कौन से घटक हैं और प्रत्येक का क्या कार्य है?
12. रुधिर प्रवाह के लिए पतली तथा शाखित कोशिकाओं का होना क्यों लाभदायक है?
13. प्रत्येक कथन के आगे सही या गलत का चिह्न लगाइये। यदि कथन गलत है तो उसे ठीक कीजिए।
    (1) आलिंद की दीवारें निलय से मोटी होती हैं।
    (2) ऑक्सीजन युक्त रुधिर बायें आलिंद में आता है।
    (3) वाल्व दोनों ओर खुलते हैं।
    (4) जाइलम भोज्य पदार्थों का संवहन करता है।
    (5) मनुष्य में रुधिर परिसंचरण खुले तंत्र द्वारा होता है।
14. किसी पौधे में उत्सर्जन कैसे होता है?
15. पौधों तथा मनुष्यों के विभिन्न अपशिष्ट पदार्थ कौन से हैं?
16. वृक्क में केशिका गुच्छ के क्या कार्य हैं?

जैव-प्रक्रियाएं — II

भूमिका

वृद्धि सभी सजीवों की एक आवश्यक प्रक्रिया है। वृद्धि उपापचयी क्रिया के कारण होती है। इस प्रक्रिया के समय नए-नए जैव रासायनिक यौगिक बनते हैं जिनका उपयोग बहुत-सी प्रक्रियाओं में होता है। जब किसी जीव में वृद्धि होती है तब उसका आकार, माप तथा भार स्थायी तथा अपरिवर्तनीय रूप में बढ़ता है। आरम्भिक अवस्थाओं में शरीर के भार में कमी भी हो सकती है जैसा कि अंकुरित बीजों में होता है। परंतु जब नवोद्भिद् वृद्धि करता है तब उसका भार पुनः बढ़ता है। वृद्धि के दौरान केवल माप में ही परिवर्तन नहीं आता बल्कि विभेदन भी होता है। जन्तुओं तथा पौधों में वृद्धि होती है। लेकिन दोनों की वृद्धि में कुछ अन्तर होता है। इसके कुछ अन्तर तालिका 19.1 में दिए गए हैं।

तालिका — 19.1

पौधों तथा जन्तुओं में वृद्धि

पौधे	जन्तु
पौधों में सारा जीवन निरन्तर वृद्धि होती रहती है पौधे में वृद्धि क्षेत्र होते हैं। ये क्षेत्र प्रायः जड़ तथा तने के अग्रिम भाग हैं	जन्तुओं की वृद्धि एक निश्चित समय में होती है। सारे शरीर में समान रूप से वृद्धि होती है।
पौधों में वृद्धि विभाज्योतक ऊतकों की उपस्थिति के कारण होती है।	जन्तुओं में विभाज्योतक ऊतक नहीं होते

अमीबा, **पैरामीशियम**, **युग्लीना** या जीवाणु जैसे एक कोशीय जीवों में वृद्धि का अर्थ है पदार्थ संश्लेषण तथा कोशिका साइज में वृद्धि होना। यह प्रक्रिया माइटोटिक कोशिका विभाजन से होती है जैसा कि आपने अध्याय 17 में पढ़ा है।

उच्चवर्गीय स्पीशीज में नर तथा मादा युग्मों में मिलने से एक युग्मनज बनता है। युग्मक अपने आप में मिऑटिक विभाजन से बनते हैं। (देखें अध्याय 17 अनुभाग 4)। युग्मनज से वृद्धि

आरम्भ होती है और यह वृद्धि एक क्रम में होती है। इस वृद्धि के क्रम की विभिन्न अवस्थाएं इस प्रकार हैं:—

1. **कोशिका विभाजन**:— कोशिका सबसे पहले पानी तथा भोजन अवशोषित करती है और परिपक्व हो जाती है। यह कोशिका बार-बार विभाजित होकर नई-नई कोशिकाएं बनाती है।

2. **कोशिका दीर्घीकरण**:— इस अवस्था में कोशिका की लम्बाई बढ़ती है।

3. **कोशिका-परिपक्वता**:— इस प्रक्रिया में रासायनिक तथा भौतिक परिवर्तन होने के कारण कोशिका में विभेदन हो जाता है। उनकी आकृति तथा साइज स्थायी हो जाती है। ऐसी कोशिकाओं से विभिन्न ऊतक तथा अंग बनते हैं।

आरम्भिक अवस्था में वृद्धि की दर कम होती है लेकिन उसके तुरन्त बाद यह दर बढ़ जाती है। अन्तिम अवस्था के पहुंचने तक वृद्धि की दर में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। वृद्धि तथा विभेदन की बहुत सी अवस्थाएं हार्मोनों जैसे रासायनिक पदार्थों के विशेष नियंत्रण में होती हैं। हार्मोन की मात्रा बहुत ही कम होती है, ये उत्पन्न होने वाले स्थान से स्थानान्तरित होकर क्रिया करने वाले स्थान तक परिवहन करते हैं। इसी अध्याय में हम हार्मोन के विषय में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

19.1 जनन

जनन जीवधारियों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है। इस प्रक्रिया में जीवों की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को जन्म देती है। जीवन की उत्पत्ति से लेकर आज तक जीवन की निरन्तरता जीवों के जनन के ही कारण बनी हुई है। जीवधारियों का अपना तथा अपनी स्पीशीज का परिरक्षण करना एक महत्वपूर्ण तथा अदभुत गुण है। कोई स्पीशीज जैसा कि अध्याय 17 में बताया गया है परस्पर सम्बन्धित पौधों अथवा जन्तुओं का एक वर्ग है जो संतति उत्पन्न करने के लिए संकरण करते हैं। स्पीशीज का परिरक्षण इसलिए संभव हो पाया है क्योंकि माता-पिता अपनी ही तरह की सन्ततियों को उत्पन्न करते हैं। किसी स्पीशीज की जनसंख्या बढ़ाने का भी जनन एक साधन है। जनन विकास में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इस दौरान जीव अपने अनुकूल विविधताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित करता है। सजीव में दो प्रकार का जनन होता है। (1) अलैंगिक जनन तथा (2) लैंगिक जनन।

19.2 अलैंगिक जनन

इस प्रकार के जनन में दो लिंगों की आवश्यकता नहीं होती। इसमें जीव स्वयं गुणित होते हैं। अलैंगिक जनन की विभिन्न विधियां इस प्रकार हैं:—

1. **विखंडन**:— जब जीव पूर्ण विकसित होता है तब यह दो भागों में विभाजित हो जाता है इसे विखंडन कहते हैं। पहले केन्द्रक विभाजित होता है और फिर कोशिका द्रव्य। विखंडन से जब दो जीव बनते हैं तो उस प्रक्रिया को द्विखंडन कहते हैं। चित्र 19.1 a में अमीबा में द्विखंडन विधि को दिखाया

गया है। इससे दो संतति कोशिकाएं बनती हैं। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि नई पीढ़ी को संतति क्यों कहते हैं?

कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों में कोशिका के चारों ओर एक सरंक्षक परत या भित्ति बन जाती है। ऐसी अवस्था को **पुटी** (सिस्ट) कहते हैं। पुटी के अन्दर कोशिका कई बार विभाजित हो जाती है जिससे बहुत सी संतति कोशिकाएं बन जाती हैं। ऐसी प्रक्रिया को बहुखंडन कहते हैं। पुटी के फटने के बाद बहुत सी कोशिकाएं बाहर निकल जाती हैं। इसी विधि को चित्र 19.1b में दिखाया गया है।

2. **मुकुलन**:– शरीर पर एक बल्ब की तरह की संरचना बनती है जिसे मुकुल कहते हैं। शरीर का केन्द्रक दो भागों में विभाजित हो जाता है और उनमें से एक केन्द्रक मुकुल में आ जाता है। मुकुल पैतृक जीव से अलग होकर वद्धि करता है और पूर्ण विकसित जीव बन जाता है उदाहरणतः यीस्ट तथा हाइड्रा (चित्र 19.1 c)।

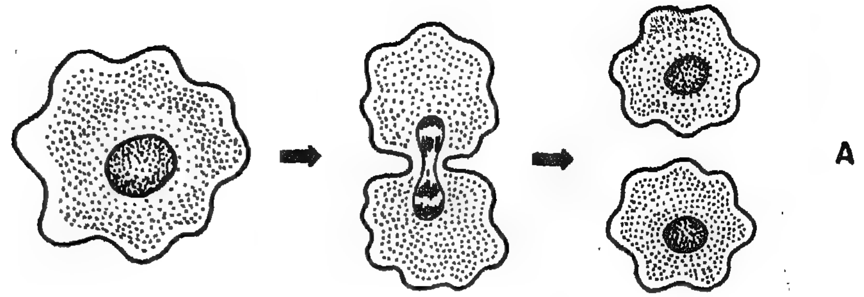
3. **खंडन**:–**स्पाइरोगायरा** जैसे कुछ जीव पूर्ण विकसित होने के बाद साधारणतः दो या अधिक खण्डों में टूट जाते हैं। ये खंड वृद्धि करके पूर्ण विकसित जीव बन जाते हैं। चित्र 19.1d में खंडन विधि द्वारा किसी चपटे कृमि से दो चपटे कृमि को बनता हुआ दिखाया गया है।

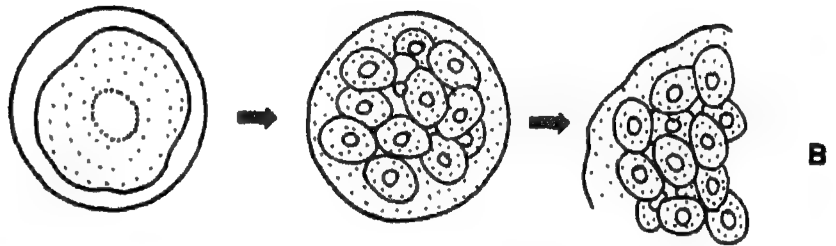
4. **बीजाणुओं द्वारा**:– कुछ जीवाणु तथा निम्न वर्गीय जीव बीजाणु विधि द्वारा जनन करते हैं। बीजाणु कोशिका की विरामी अवस्था है जिसमें प्रतिकूल परिस्थिति में कोशिका की रक्षा के लिए उसके चारों ओर एक मोटी भित्ति बन जाती है। अनुकूल परिस्थिति में मोटी भित्ति टूट जाती है और जीवाणु सामान्य विधि से जनन करता है और वृद्धि करके पूर्ण विकसित जीव बन जाता है। इस विधि द्वारा जनन करने के कुछ उदाहरण हैं–म्यूकर, फर्न अथवा मॉस।

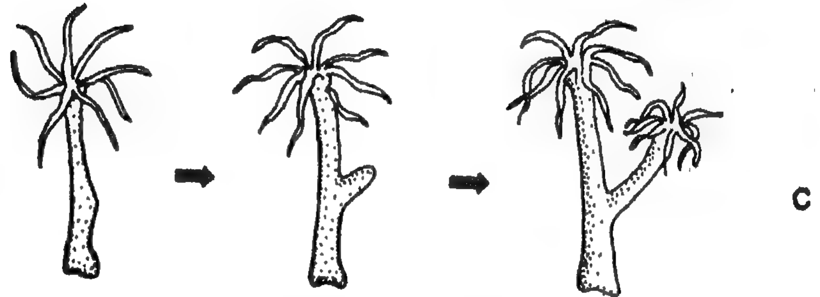
5. **कायिक प्रवर्धन**:– आपने देखा होगा कि माली गुलाब की एक टहनी लेकर उसे जमीन में गाड़ देता है। अनुकूल परिस्थिति में इस टहनी से गुलाब का नया पौधा बन जाता है। पौधे के किसी भी कायिक अंग जैसे पत्ता, तना अथवा जड़ का उपयोग नया पौधा तैयार करने में कर सकते हैं। इस प्रक्रिया को कायिक प्रवर्धन कहते हैं। इस विधि का उपयोग प्रायः उच्च वर्गीय पौधों विशेषतः उद्यान में लगाने वाले तथा फल देने वाले पौधों में किया जाता है। पौधों में कायिक प्रवर्धन एक सामान्य विधि है।

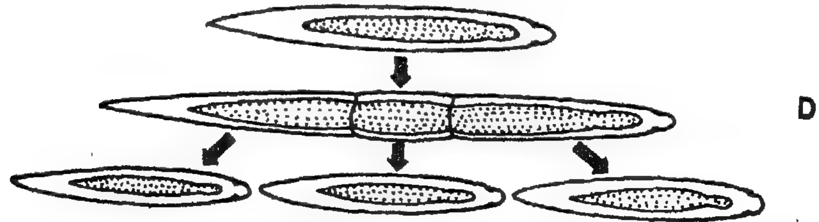
उदाहरणतः अमरूद अथवा शकरकंद अथवा पोदीने (चित्र 19.2 a) की छोटी–छोटी जड़ों पर अपस्थानिक कलियां होती हैं। ये कलियां अनुकूल परिस्थितियों में वृद्धि करके पूर्ण विकसित पौधा बना देती हैं।

अन्य पौधों में उनकी शाखाएँ कुछ दूरी तक उगती हैं और उसके बाद उनमें भूमि की ओर





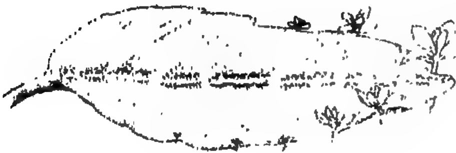




चित्र 19.1 (a) अमीबा में द्विखंडन। (b) पुटि बनना तथा कोशिकाओं का परजीवी में निकलना। (c) हाइड्रा में मुकुलन। (d) स्पाइरोगाइरा में खंडन।







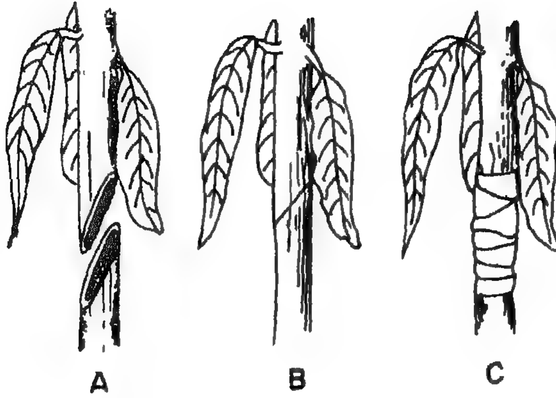
चित्र 19.2 पत्तियों के मुकुलन से पोदीने का नया पौधा बनना, कक्ष का बनना तथा आलू के वायवीय प्ररोह का निकास, पत्तियों में मुकुलन तथा ब्रायोफिलम का नया पौधा बनना।

अपस्थानिक जड़ें और ऊपर की ओर पत्तियां निकलती हैं। आलू की शल्की पत्तियों के कक्ष में कलियां होती है। इन कलियों से वायवीय प्ररोह विकसित हो जाते हैं (चित्र 19.2b)। इस के अन्य उदाहरण हैं अदरक, हल्दी, प्याज, केला, लहसुन तथा जलकुम्भी।

पत्तियाँ :– ब्रायोफिलम की पत्तियों के किनारों पर स्थित खांचों में अपस्थानिक कलियां होती हैं। अनुकूल परिस्थितियों में कलियां वृद्धि करके पूर्ण विकसित पौधा बना देती हैं (चित्र 19.2 c)।

मनुष्य ने पौधों में कायिक प्रवर्धन विधि का उपयोग अपने लाभ के लिए किया है। इससे वह उद्यानों तथा नर्सरी में नए-नए पौधे उगा सकता है। कायिक प्रवर्धन में आजकल रोपण, कलम, दाब कलम तथा ऊतक संवर्धन जैसी विधियां अपनाई जाती हैं।

रोपण :– इस विधि में हम ऐच्छिक पौधे की टहनी (कलम) को किसी अन्य वृक्ष के ठूंठ (स्कन्ध) पर लगा देते हैं। स्कन्ध पौधे का वह भाग होता है जिसके तने पर मिट्टी के नीचे पूरा मूल-तंत्र होता है। कलम ऐच्छिक पौधे की टहनी होती है। दोनों भागों को बांध देते हैं (चित्र 19.3)। कैम्बियम की प्रक्रिया के कारण कलम तथा स्कन्ध एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। स्कन्ध कलम को पोषण प्रदान करता है। इस विधि को अपनाने से हम ऐच्छिक गुणों वाले पौधे तथा फल प्राप्त कर सकते हैं। आम की बहुत सी किस्में रोपण विधि से ही प्राप्त की जा सकती हैं।



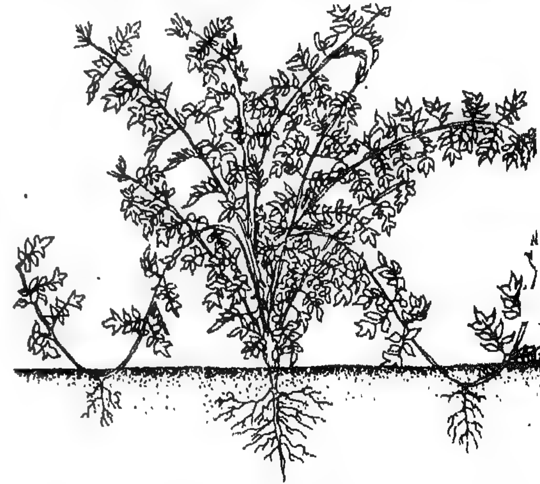
चित्र 19.3 तने की कलम द्वारा रोपना।

कलम लगाना :– यदि हम गुलाब के पौधे की कलम काटकर नम मिट्टी में लगा दें तो इसमें जड़ें निकल आती हैं और बाद में वृद्धि करके नया पौधा बन जाता है। कलम लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें कुछ कलिकाएँ अवश्य हों। कलम लगाने की विधि का उपयोग बोगेनविलिया, गन्ना, कैक्टस तथा अन्नानास उगाने में किया जाता है।

दाब कलम :– इस विधि में पौधे की किसी शाखा को झुका कर नम मिट्टी में दबा देते हैं। कुछ समय बाद इससे जड़ें निकल आती हैं और उसके बाद नयी पौध बन जाती है। नयी पौध को इसके पैतृक पौधे से काटकर अलग कर देते हैं। नयी पौध वृद्धि करके पूर्ण विकसित पौधा बन जाता है। चित्र 19.4 में दाब कलम से चमेली के पौधे बनाना दिखाया गया है।

ऊतक संवर्धन :– इस विधि में पौधे के ऊतक के एक छोटे से भाग को काट लेते हैं। इस ऊतक को उचित परिस्थितियों में पोषक माध्यम में रखते हैं। ऊतक से एक अनियमित ऊर्ध्व सा बन जाता है जिसे **कैलस** कहते हैं। कैलस का उपयोग पुनः गुणन में किया जाता है। इस ऊतक का छोटा सा भाग किसी अन्य माध्यम में रखते हैं जो पौधे में विभेदन की प्रक्रिया को उत्तेजित करता है। इस पौधे को गमलों या भूमि में लगा देते हैं और उस को परिपक्व होने तक वृद्धि करने दिया जाता है। ऊतक संवर्धन से आजकल आर्चिड, गुलदाउदी, शतावरी तथा बहुत से अन्य पौधे तैयार किए जाते हैं।

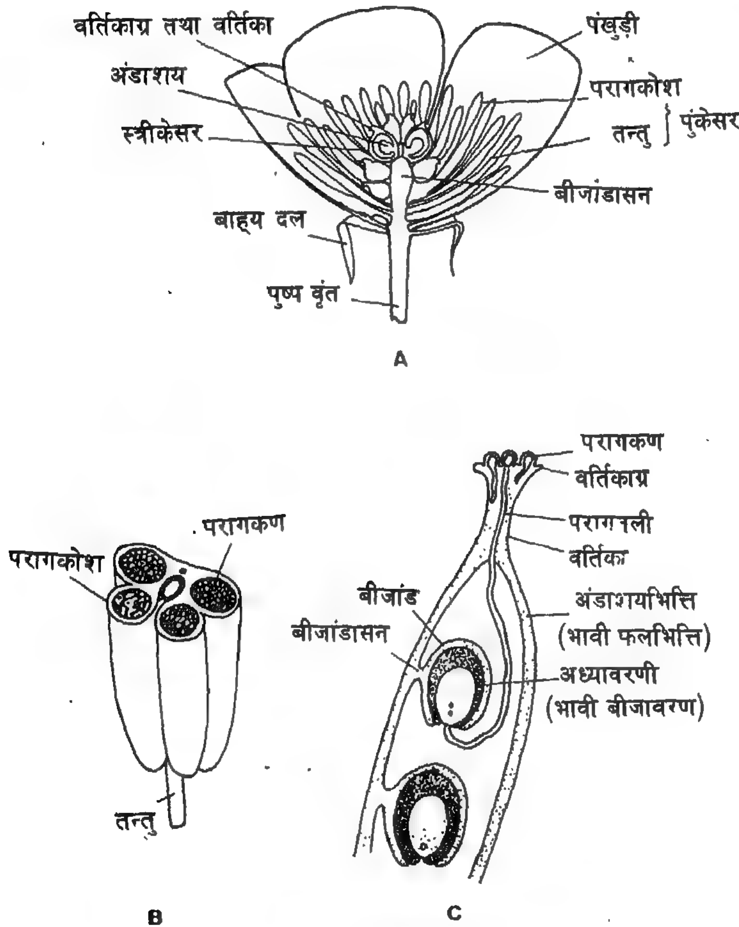
कायिक प्रवर्धन द्वारा तैयार किए गए पौधों में बीज से उगाए जाने वाले पौधों की अपेक्षा फूल तथा फल जल्दी उगते हैं। इस विधि द्वारा हम बीज रहित फल भी प्राप्त कर सकते हैं। कायिक प्रवर्धन द्वारा उगाए गए पौधे अपने पैतृक पौधों के बिल्कुल समान होते हैं उनमें कोई भी अन्तर नहीं होता। परंतु इससे उनमें वातावरण से अनुकूलित होने की क्षमता कम हो जाती है।



चित्र 19.4 दाबकलम से चमेली का नया पौधा उत्पन्न करना।

19.3 लैंगिक जनन

इस प्रकार के जनन में नर तथा मादा दोनों ही भाग लेते हैं। शिशु दो विशेष कोशिकाओं के मिलने से बनता है जिन्हें युग्मक कहते हैं। प्रायः उनमें से एक युग्मक दूसरे युग्मक की अपेक्षा अधिक सक्रिय तथा छोटा होता है। सक्रिय तथा छोटा युग्मक नर से प्राप्त होता है इसे शुक्राणु कहते हैं। दूसरा युग्मक जो निष्क्रिय तथा बड़ा होता है मादा से आता है और इसे अंडाणु कहते हैं। यदि कोई जीव केवल शुक्राणु उत्पन्न करे तो उसे नर कहते हैं। यदि कोई जीव केवल अंडाणु उत्पन्न करे तो उसे मादा कहते हैं।



चित्र 19.5 (a) बटर-कप फूल के विभिन्न भाग (b) परागकोश की रचना (शीर्ष कटा हुआ) (c) निषेचन

बहुत-सी स्पीशीज जैसे मनुष्य में नर तथा मादा दोनों स्पष्टतया भिन्न होते हैं। लेकिन कुछ स्पीशीज जैसे केंचुआ तथा हाइड्रा में एक ही जीव नर तथा मादा दोनों युग्मकों को उत्पन्न करता है। ऐसे जीवों को **उभयलिंगी** या **द्विलिंगी** कहते हैं। लेकिन ये उभयलिंगी जीव एक ही समय में या तो नर युग्मक उत्पन्न करते हैं या मादा युग्मक। इस प्रकार एक समय में ये एक लिंगी जैसे नर या मादा के रूप में ही काम करते हैं। इसलिए इन जन्तुओं में भी जनन के लिए अलग-अलग नर तथा मादा की आवश्यकता होती है। इनमें से एक युग्मक नर से आता है तथा दूसरा मादा से। नर युग्मक को शुक्राणु तथा मादा युग्मक को अंडाणु कहते हैं। लैंगिक जनन एक कोशिकीय तथा बहुकोशिकीय दोनों जीवों में होता है। बहुकोशिकीय जीवों में लैंगिक जनन बहुत ही सामान्य है।

पौधों में लैंगिक जनन

फूल,पौधे का जनन अंग होता है। चित्र 19.5 में फूल में जनन अंगों को दिखाया गया है। जैसे—आप जानते हैं कि इसमें **पुंकेसर** नर तथा **स्त्री केसर** मादा जनन अंग हैं। पुंकेसर के अग्र भाग पर परागकोश होते हैं। परागकोश में पराग कण होते हैं। पराग कण छोटी-छोटी संरचनाएं होती हैं। ये नर युग्मक बनाते हैं। स्त्रीकेसर का आधार चौड़ा होता है और ऊपर जाते-जाते पतला होता जाता है। निचले चौड़े आधार को अंडाशय कहते हैं। इसमें अंडाणु होते हैं। अंडाणु में बीजांड होते हैं। स्त्रीकेसर के ऊपरी भाग को वर्तिका कहते हैं। वर्तिका का अग्रभाग चिपचिपा होता है। इसे वर्तिकाग्र कहते हैं। परागकण, हवा, पानी या कीटों द्वारा स्त्रीकेसर के वर्तिकाग्र पर पहुंच जाते हैं। परागकोश से परागकण वर्तिकाग्र पर स्थानान्तरित हो जाते हैं तब ऐसी प्रक्रिया को **परागण** कहते हैं। परागण के बाद परागकण से एक परागनली निकलती है। परागनली में दो नर युग्मक होते हैं। इनमें से एक नर युग्मक पराग नली में से होता हुआ बीजांड तक पहुंच जाता है। यह बीजांड के साथ संलयित हो जाता है जिससे एक युग्मनज बनता है। ऐसे संलयन को **निषेचन** कहते हैं। युग्मनज माइटोटिक विधि द्वारा कई बार विभाजित होता है जिससे अन्ततः एक नया पौधा बन जाता है। चित्र 19.5 द्वारा पौधे में निषेचन प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

निषेचन के बाद फूल के पंखुड़ी, पुंकेसर, वर्तिका, तथा वर्तिकाग्र गिर जाते हैं। बाह्य दल सूख जाता है पर अंडाशय से लगा रहता है। अंडाशय शीघ्रता से वृद्धि करता है। इसमें स्थित कोशिकाएं विभाजित हो कर वृद्धि करती हैं और बीज का बनना आरम्भ हो जाता है। बीज में एक पौधा अथवा भ्रूण उत्पन्न करने की क्षमता होती है। भ्रूण में एक छोटी जड़ (मूलज), एक छोटा प्ररोह (प्रांकुर) तथा बीजपत्र होते हैं। बीजपत्र में भोजन संचित रहता है। समयानुसार बीज सख्त होकर सूख जाता है। यह बीज प्रतिकूल परिस्थिति में भी जीवित रह सकता है। अंडाशय की दीवार या तो कड़ी हो जाती है और एक फली बन जाती है जैसे खसखस में अथवा एक गूदेदार रसीला फल बन सकती है जैसे आलूबुखारा अथवा टमाटर में। निषेचन के बाद सारे अंडाशय को फल कहते हैं।

जन्तुओं में लैंगिक जनन

जन्तुओं में लैंगिक जनन विभिन्न विधियों द्वारा

होता है। लैंगिक जनन के समय **मोनोसिस्टिस** जैसे एक कोशिकीय जीव आकार तथा साइज में समान होते हैं। मलेरिया परजीवी में दोनों जीव असमान होते हैं। बहुकोशिकीय जीवों में नर शुक्राणु तथा मादा अंडा उत्पन्न करती है। उभयलिंगी जीवों में एक ही जीव एक समय में शुक्राणु उत्पन्न करता है तो दूसरे में अंडा।

मेंढक में नर तथा मादा दोनों जीव संभोग करते हैं और अपने-अपने युग्मकों को पानी में छोड़ देते हैं। शुक्राणु अंडों को पानी में ही निषेचित करता है। ऐसे निषेचन को बाह्य निषेचन कहते हैं।

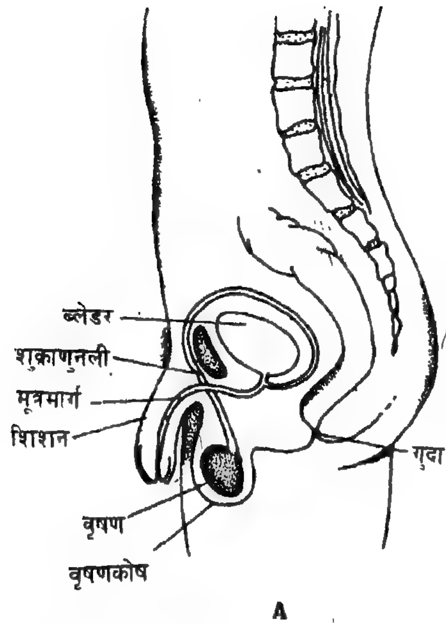
मवेशी, कुत्ता, कीट, मकड़ी, मनुष्य तथा ऐसे ही अन्य जन्तुओं में नर अपने शुक्राणु को मादा के शरीर के अन्दर छोड़ते हैं। शुक्राणु अंडों को मादा के शरीर के अन्दर ही निषेचित करते हैं। ऐसे निषेचन को आन्तरिक निषेचन कहते हैं। निषेचन के फलस्वरूप युग्मनज बनता है। निषेचन के तुरन्त बाद युग्मनज विकसित होना आरम्भ कर देता है। युग्मकों में अपने माता-पिता की तुलना में आधी संख्या में गुण सूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं। निषेचन से जब दो युग्मक जिनमें आधी संख्या में क्रोमोसोम होते हैं, मिलते हैं तब जीव में क्रोमोसोम की संख्या पूरी हो जाती है।

मनुष्य में जननतंत्र

मनुष्य में जनन अंग मादा में 12 से 13 वर्ष की आयु में तथा नर में 15 से 18 वर्ष की आयु में प्रायः क्रियाशील हो जाते हैं। जनन अंग भी कुछ हॉर्मोन स्रावित करते हैं जो शरीर में परिवर्तन लाते हैं। ऐसे परिवर्तन मादा में प्रायः वक्ष तथा जनन अंगों पर बाल उगने से परिलक्षित होते हैं। नर में ये परिवर्तन जननांगों पर बाल उगने, दाढ़ी तथा मूछें आने से परिलक्षित होते हैं।

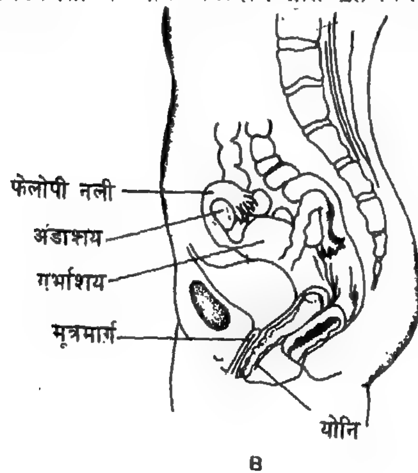
चित्र 19.6 a में नर के जनन अंगों को दिखाया गया है। ग्रन्थि जिसे **वृषण** कहते हैं एक जोड़ी होते हैं। ये वृषण पेशीय थैले जिसे वृषण कोष कहते हैं, में स्थित होते हैं। प्रत्येक वृषण से एक नली निकलती है तथा दोनों मिलकर एक नली में खुलते हैं जिसे मूत्र मार्ग कहते हैं। मूत्र मार्ग एक पेशीय अंग से निकलता है जिसे **शिश्न** कहते हैं। शिश्न में बहुत अधिक मात्रा में रुधिर प्रवाहित होता है और इसकी पेशियां भी विशेष प्रकार की होती हैं जो शिश्न को कभी कभी सख्त भी बना देती हैं। शिश्न का उपयोग मूत्र करने तथा नर जनन कोशिकाओं अर्थात् शुक्राणुओं को निकालने में किया जाता है। शुक्राणु वृषण में उत्पन्न होते हैं और वही पर संचित रहते हैं। विशेष संरचना जिसे शुक्राशय कहते हैं,वृषण में शुक्राणु के पोषण के लिए विशेष तरल छोड़ती है। शिश्न शुक्राणुओं को मादा जनन अंगों में छोड़ देता है।

मादा के जनन तन्त्र में अंडाशय, अंडवाहिनी, योनि तथा भग होते हैं (चित्र 19.6b)। उदरीय गुहिका में एक जोड़ी **अंडाशय** होते हैं। अंडाशय के पास से **अंडवाहिनी** एक कीप की तरह शुरू होती है तथा एक पतली तथा कुंडलित **डिम्ब वाहिनी** नलिका तक जाती है। दोनों ओर की डिम्ब वाहिनी नलिका जुड़कर एक बड़ा कोष्ठ बनाती है जिसे **गर्भाशय** कहते हैं। गर्भाशय एक कोष्ठ में खुलता है जिसे **योनि** कहते हैं। योनि बाहर की ओर एक छिद्र से खुलती है जिसे **भग** कहते हैं। **उत्सर्जन नलिका** (मूत्रवाहिनी) एक



चित्र 19.6 (a) पुरुष का जनन तंत्र।

अन्य अलग छिद्र से बाहर की ओर खुलती है। परिपक्वता के बाद अंडाशय प्रति 28 दिन के



चित्र 19.6 (b) स्त्री का जनन तंत्र।

बाद एक अंडा छोड़ता है। अंडे के छोड़ने की प्रक्रिया को **अंडोत्सर्ग** कहते हैं। अंडोत्सर्ग से पहले गर्भाशय अंडे को ग्रहण करने के लिए अपने को तैयार करता है। इस कार्य के लिए गर्भाशय की कोशिकीय अन्तःस्तर जिसमें रुधिर वाहिकाएं होती हैं, गिर जाता है और उसके स्थान पर नया अन्तःस्तर बन जाता है। यह प्रक्रिया 3-4 दिन तक चलती है और इस प्रक्रम में रुधिर निकलता है। इस प्रक्रिया को **रजोधर्म** कहते हैं। रजोधर्म के 12-14 दिन बाद **अंडोत्सर्ग** होता है। गर्भाशय में अंडा चौदहवें दिन आता है और शुक्राणु की प्रतीक्षा सोलहवें दिन तक करता है। यदि इसे शुक्राणु नहीं मिलता तो यह विघटित होना आरम्भ हो जाता है। अठ्ठाइसवें दिन के बाद यह अंडा तथा गर्भाशय का अन्तःस्तर रजोधर्म के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है। यदि अंडे से शुक्राणु मिल जाता है तो एक **युग्मनज** बन जाता है। युग्मनज गर्भाशय की दीवार पर चिपक जाता है और भ्रूण बनना आरम्भ कर देता है। गर्भाशय की दीवार के ऊतकों तथा भ्रूण के ऊतकों के एक दूसरे से जुड़ने के कारण युग्मनज गर्भाशय की दीवार से आसानी से चिपक जाता है। अब मादा को गर्भवती कहते हैं।

युग्मनज के गर्भाशय की दीवार से चिपकने से भ्रूण तथा मादा में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस जुड़ने को **प्लेसैन्टा** कहते हैं। जब भ्रूण बन जाता है और वह गर्भाशय की दीवार पर चिपक जाता है तब रजोधर्म तथा अंडोत्सर्ग बंद हो जाते हैं। बच्चा पैदा होने के बाद रजोधर्म तथा अंडोत्सर्ग पुनः आरंभ हो जाते हैं। मनुष्य में नर सारा जीवन शुक्राणु उत्पन्न कर

सकता है लेकिन मादा 45-50 वर्ष की आयु तक ही अंडे उत्पन्न कर सकती है। इस आयु के बाद उसमें न तो अंडोत्सर्ग होता है और न ही रजोधर्म।

शरीर के अन्य अंगों की तरह जनन अंग भी महत्वपूर्ण हैं जिनकी स्वच्छता दूसरे अंगों की तरह करनी चाहिए। जनन अंगों के कार्य करने की प्रणाली को अनावश्यक गुप्त रखने से बहुत-सी गलत धारणाएं उत्पन्न हो गई हैं।

निषेचन को नियंत्रिण करना संभव है क्योंकि अण्डा निषेचन के लिए कुछ ही समय के लिए उपलब्ध रहता है। अब यांत्रिक, रासायनिक तथा शल्य युक्तियाँ उपलब्ध हैं जिनसे शुक्राणु तथा अंडे के मिलने को अथवा गर्भ को रोका जा सकता है। सभी जागरुक नागरिकों को अपने परिवार को नियोजित करने के लिए किसी भी विधि का उपयोग करना चाहिए। इससे जनसंख्या की वृद्धि रुक सकेगी और परिवार का कल्याण हो सकेगा।

19.4 नियंत्रण तथा समन्वय

जब आप भोजन कर रहे हों तब आप अपने शरीर की विभिन्न क्रियाओं के विषय में सोचिए। आपकी आंखें भोजन देखने में सहायता करती हैं, आपकी नाक भोजन की गंध सूंघने में सहायता करती है और आपके हाथ भोजन को मुख तक पहुंचाते हैं। मुख भोजन को ग्रहण करता है। दांत तथा जबड़े की पेशियां भोजन को चबाती है और लार पाचन की प्रक्रिया प्रारम्भ करती हैं। यदि इनमें से कोई भी क्रिया किसी चरण से अलग हो जाए तो कुछ कठिनाई हो सकती है। इसी प्रकार जब आप दौड़ रहे होते हैं तब आपकी सांस लेने की दर बढ़ जाती है और आपकी मांसपेशियों को अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, जब आप दौड़ना बन्द कर देते हैं तब आपकी सांस तथा हृदय गति सामान्य हो जाते हैं।

इन सभी क्रिया कलापों में शरीर के विभिन्न अंग मिलकर कार्य करते हैं। एक तंत्र का समन्वयन तथा कार्य अन्य तन्त्रों द्वारा समन्वित होता है। समन्वय के बिना हम कोई भी कार्य नहीं कर पाते जो हम एक जीव के रूप में करते हैं।

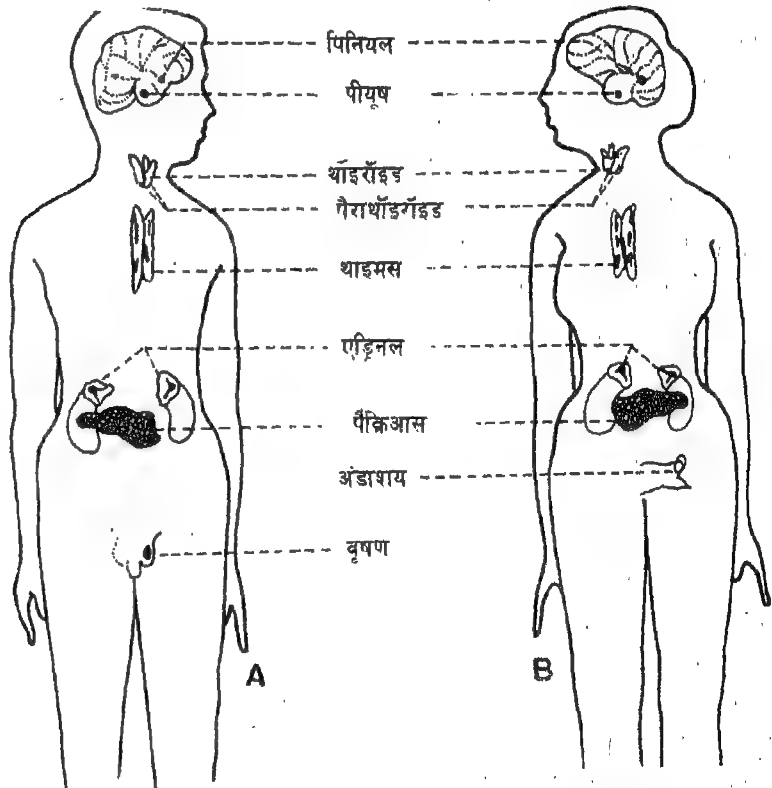
नियंत्रण तथा समन्वय जीव के भीतरी तथा बाहरी वातावरण का संतुलन बनाए रखने में सहायता करता है। उदाहरण के लिए हमें गर्मियों में अधिक पसीना आता है। पसीने के वाष्पित होने के बाद हमारा शरीर ठण्डा हो जाता है। चूंकि पसीनें से हमारे शरीर से पानी की बहुत हानि हो जाती है इसलिए इस कमी को पूरा करने के लिए हमें प्यास लगती है और हम अधिक पानी पीते हैं। पसीना आना तथा प्यास लगना शरीर की क्रिया के ही कारण है। इससे शरीर में पानी तथा ताप में एक इष्टतम् संतुलन बना रहता है। इसी प्रकार पहाड़ों की ऊँचाई पर चढ़ने वाले पर्वतारोही ऑक्सीजन की कमी अनुभव करते हैं। इससे उनके शरीर की क्रियात्मक क्रियाओं में परिवर्तन आता है और इस परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए उनमें लाल रुधिर कोशिकाएं अधिक बन जाती हैं। उनका भीतरी वातावरण बाहरी परिवर्तनों को सहने का प्रयत्न करता है जिससे शरीर के कार्य सुचारू रूप से चलते रहते हैं। शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सहायक अवस्था को बनाये रखने की क्षमता को **होमियोस्टेसिस** कहते हैं। लेटिन में होमियो का अर्थ है समान तथा स्टेसिस का अवस्था अर्थात समान अवस्था। उच्च वर्गीय जीवों में शरीर की क्रियात्मक क्रियाओं को नियंत्रित करना भी उतना

ही आवश्यक है जितना समन्वय।

नियंत्रण तथा समन्वय केवल उन्हीं जीवों में महत्वपूर्ण है जिनमें अलग-अलग अंग अथवा शरीर क्रियात्मक तन्त्र होते हैं। अमीबा में इस प्रकार के कार्यों की आवश्यकता नहीं होती। इनकी कोशिकाओं में कोशिकांग होते हैं जो उनके कार्यों में आवश्यक समन्वय कर लेते हैं। बहुकोशिकीय जीवों में दो प्रकार का समन्वय देखा गया है—रासायनिक तथा तंत्रिका समन्वय। इस संदर्भ में पौधों तथा जन्तुओं में विभिन्नता है। पौधों में तंत्रिका तन्त्र नहीं होता जबकि हाइड्रा जैसे निम्नवर्गीय जीव में भी तंत्रिका तंत्र होता है। पौधों में समन्वय केवल रासायनिक विधि द्वारा होता है।

19.5 पौधों में रासायनिक समन्वय

पौधे अपनी कोशिका में कुछ विशेष रसायन उत्पन्न करते हैं जो पौधे की वृद्धि को नियमित करते हैं। इनमें से कुछ रसायन पौधे की वृद्धि को उत्प्रेरित करते हैं जबकि कुछ अन्य इसके



चित्र 19.7 पुरुष तथा स्त्री के शरीर में विभिन्न अंतः स्त्रावी ग्रन्थियों की स्थिति।

विपरीत कार्य करते हैं अर्थात् वृद्धि दर को कम कर देते हैं। इन रसायनों को पादप वृद्धि नियमक कहते हैं। इन्हें ऑक्सिन, साइटोकाइनिन अथवा पादप हॉर्मोन (हॉर्मोन शब्द ग्रीक भाषा का है जिस का अर्थ है गति में उत्प्रेरित करना या उत्तेजित करना) भी कहते हैं। विभिन्न रासायनिक नियामक हैं जो वृद्धि, गति तथा फूल खिलने को नियंत्रित करते हैं। ऑक्सिन प्रायः अंकुरित हुए बीजों की वृद्धि के अग्र भाग पर उत्पन्न होता है और प्ररोह को वृद्धि के लिए प्रोत्साहित करता है। लेकिन अंकुरित जड़ों में ऑक्सिन वृद्धि दर को कम कर देता है। आप देख सकते हैं कि एक ही पदार्थ किसी पौधे के एक स्थान पर तो वृद्धि करता है तथा दूसरे स्थान पर वृद्धि में रुकावट डालता है। ऑक्सिन अन्य शरीर क्रियात्मक क्रियाओं जैसे पत्तियों का गिरना, फूलों का खिलना तथा फलों का बनना एवं पकना आदि को भी प्रभावित करता है। पौधे को प्रभावित करने के लिए हॉर्मोन की बहुत ही कम मात्रा में आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हॉर्मोन एक स्विच की तरह कार्य करता है।

ऐसे नियामक के कुछ उदाहरण हैं जैसे जिबेरलिन तथा एब्सेसिक ऐसिड। जिबेरलिन वृद्धि चोटियों पर होता है और वह कोशिका विभाजन तथा उनका दीर्घीकरण करने के लिए उत्तेजित करता है। यह प्रायः बीजों की प्रसुप्त अवस्था को समाप्त करके उसे अंकुरित करता है और पौधों में फूल खिलाने की प्रक्रिया में सहायता करता है। ऐसा अनुमान है कि एब्सेसिक ऐसिड पौधों से पत्तियों, फूलों तथा फलों के गिरने को नियमित करता है।

19.6 जन्तुओं में रासायनिक समन्वय

पौधों की तरह जन्तुओं में भी शरीर की क्रियात्मक प्रक्रियाओं को नियमित करने के लिए विशेष रसायन होते हैं। ये हॉर्मोन जिन विशेष अंगों में उत्पन्न होते हैं उन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थि कहते हैं। इन ग्रन्थियों में कोई भी वाहिका नहीं होती (जैसा कि अंडाशय अथवा वृषण में) और वे हॉर्मोन को सीधे ही रुधिर प्रवाह में स्रावित करती हैं। शरीर के किन्हीं भागों में पहुंचकर ये हॉर्मोन विशेष परिवर्तन करते हैं जैसे शरीर की वृद्धि की दर, लैंगिक परिपक्वता आदि। चित्र 19.7 में शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की स्थिति देख सकते हैं। स्त्री तथा पुरुष में बहुत सी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ समान होती हैं लेकिन उनके कार्यों में असमानता होती है। कुछ लैंगिक ग्रन्थियां भी होती हैं। पुरुष में वृषण होते हैं तो स्त्री में अंडाशय। तालिका 19.2 में विभिन्न ग्रन्थियों द्वारा स्रावित हॉर्मोन तथा शरीर में उनके कार्यों को आप देख सकते हैं।

आपने उपरोक्त तालिका में देखा है कि कभी कभी एक हॉर्मोन दूसरे हॉर्मोन के विपरीत कार्य करता है। TSH थॉयरॉक्सिन के उत्पादन को उत्तेजित करता है लेकिन यदि थॉयरॉक्सिन का उत्पादन अधिक हो तो पीयूष क्रिया करता है और वह TSH के उत्पादन को नियंत्रित करता है। इसके परिणामस्वरूप यह थॉयरॉक्सिन उत्पादन को ईष्टतम स्तर पर रखता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि TSH तथा थॉयरॉक्सिन एक दूसरे के स्तर को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार की क्रिया आप साईकिल के पैडल तथा ब्रेक में भी देख सकते हैं। इस प्रकार के विपरीत

तालिका – 19.2

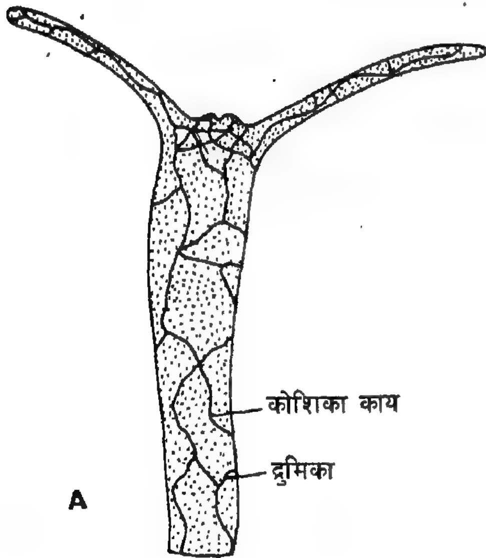
मनुष्य के शरीर में कुछ महत्वपूर्ण हार्मोन

ग्रन्थि	*हॉर्मोन*	*कार्य*
थॉइरॉइड	थॉयरॉक्सिन	उपापचय तथा वृद्धि की दर नियमित करता है। इस हार्मोन की कमी होने से मोटापा बढ़ता है और शरीर में शिथिलता आ जाती है। अधिकता से शरीर अति सक्रिय हो जाता है तथा भार गिर जाता है।
अग्नाशय	इन्सूलिन	शक्कर के उपापचय को नियमित करता है। इसकी कमी से रुधिर में शक्कर का स्तर बढ़ जाता है और कमजोरी आती है–ऐसी परिस्थिति को मधुमेह कहते हैं।
अधिवृक्क	कॉर्टिसोन	इस ग्रन्थि का बाहरी भाग कोर्टेक्स रस उत्पन्न करता है। यह प्रोटीन को शक्कर में बदलने में सहायता करता है। पीयूष ग्रन्थि कोर्टेक्स को उत्तेजित करती है।
पीयूष ग्रंथि (मास्टर ग्रंथि)	वृद्धि हार्मोन ऐन्टीडाइयूरेटिक हार्मोन (ADR)	हड्डी तथा ऊतकों की वृद्धि को नियमित करता है। वृक्क द्वारा पुनः अवशोषित पानी की मात्रा को नियंत्रित करता है।
	ACTH	कॉर्टिसोन बनाने के लिए अधिवृक्क कोर्टेक्स को उत्तेजित करता है।
	FSH	एस्ट्रोजन बनाने के लिए अंडाशय को उत्तेजित करता है।
	TSH	थॉयरॉक्सिन बनाने के लिए थॉइरॉइड को उत्तेजित करता है।
अंडाशय	एस्ट्रोजन	बहुत से कार्य तथा गुण जैसे वक्ष का विकास करना।
वृषण	टेस्टोस्टरोन	पुरूष के बहुत से गुण जैसे मूंछ तथा दाढ़ी में वृद्धि करना।

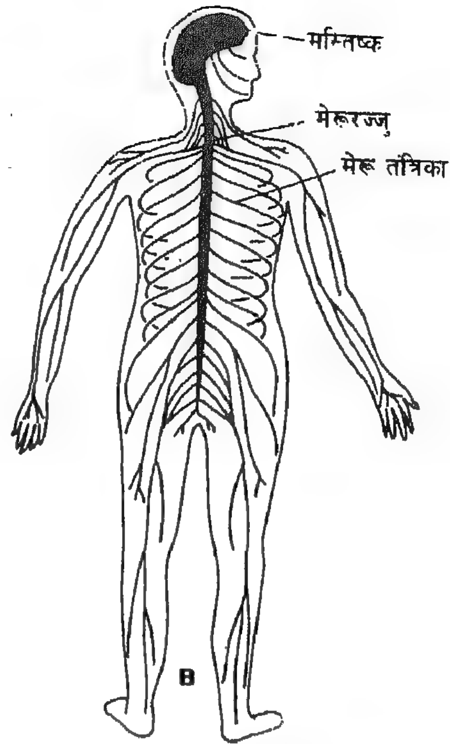
प्रभावों से तंत्र में नियंत्रण तथा संतुलन बना रहता है। दो विपरीत तंत्र परस्पर क्रियाएं करते हैं और सूचना का पुनर्निवेश करते हैं जिससे शरीर समायोजित हो सके। ऐसे पुनर्निवेश का प्रभाव ही होमियोस्टेसिस अथवा शरीर के कार्य में स्थिरता प्रदान करता है।

19.7 तंत्रिका तंत्र

अन्त:स्रावी ग्रन्थि तंत्र रुधिर प्रवाह द्वारा शरीर क्रिया को नियंत्रित करता है। नियंत्रण एवं समन्वय का अन्य तंत्र है —**तंत्रिका तंत्र**। इस तंत्र में सारे शरीर में ऊतकों की एक शृंखला सी रहती है। ये ऊतक विद्युत संवहन कोशिका का जाल सा बनाते हैं। तंत्रिकाओं द्वारा शरीर के एक भाग से संदेश दूसरे भाग में भेजे जाते हैं। चित्र 19.8



चित्र 19.8 (a) हाइड्रा का तंत्रिका तंत्र।

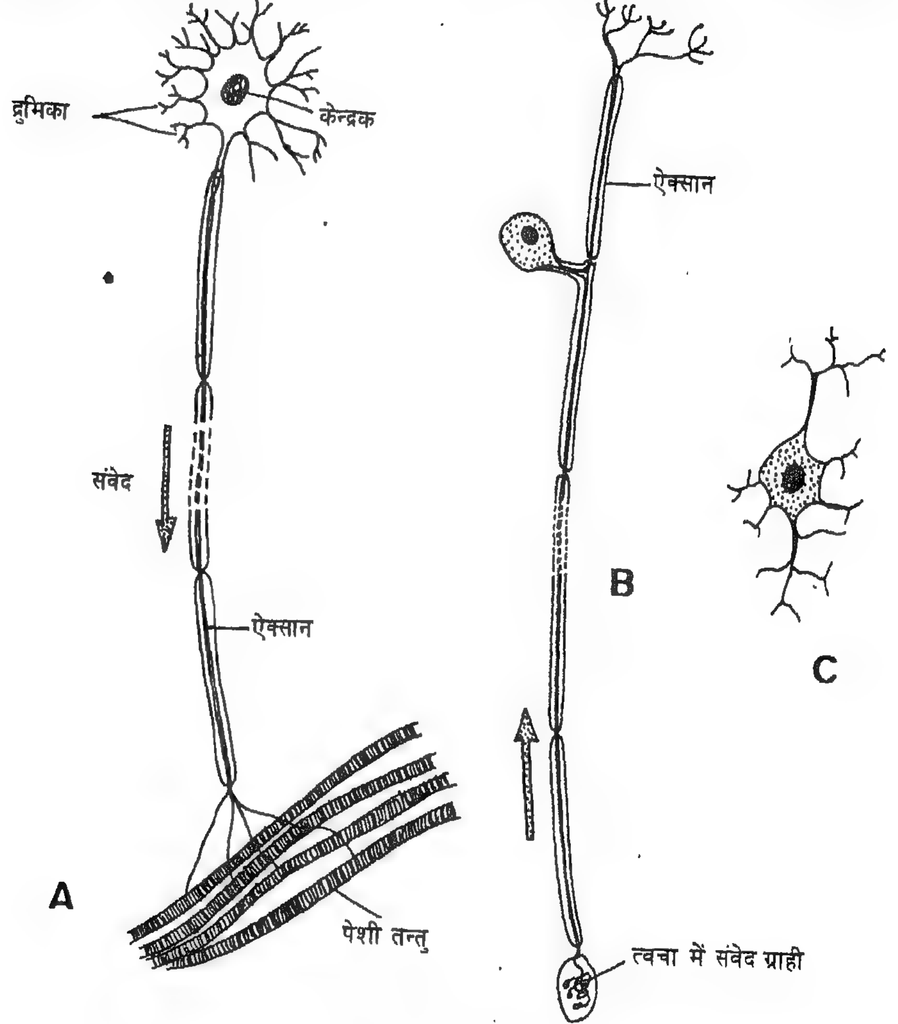


चित्र 19.8 (b) मनुष्य का तंत्रिका तंत्र।

में हाइड्रा तथा मनुष्य का तंत्रिका तंत्र दिखाया गया है। मनुष्य में तंत्रिका तंत्र बहुत जटिल है। उसमें एक विशेष भाग होता है जिसे **मस्तिष्क** कहते हैं। हाइड्रा में मस्तिष्क नहीं होता। इस भिन्नता के बावजूद भी दोनों में संदेश पहुंचाने की क्रिया मूलत: एक ही है। संदेश के संवाहन की मूल इकाई **तंत्रिकोशिका** है। यह तीन प्रकार की होती है — प्रेरक तंत्रिकोशिका, संवेदी तंत्रिकोशिका तथा बहुध्रुवी तंत्रिकोशिका।

सामान्य कोशिका से तंत्रिकोशिका बहुत भिन्न होती है। यह वास्तव में बिजली के तार की तरह दिखाई पड़ती है। एक सिरे पर यह

संवेदी ग्राही से जुड़ी रहती है। यह भाग संवेद को ग्रहण करता है और उसे विद्युत सिग्नल में बदल देता है। इस संकेत को तंत्रिकोशिका ले जाती है। तंत्रिकोशिका का दूसरा सिरा मस्तिष्क में जाता है जहां पर मस्तिष्क संदेश को ग्रहण कर उस पर क्रिया करता है। प्रेरक तंत्रिका संदेश को पेशी अथवा ग्रन्थियों से तंत्रिका केन्द्र तक ले जाती है। प्रायः संदेश को एक तंत्रिकोशिका से दूसरी तंत्रिकोशिका तक जाना पड़ता है। यह कार्य संगम स्थान द्वारा होता है

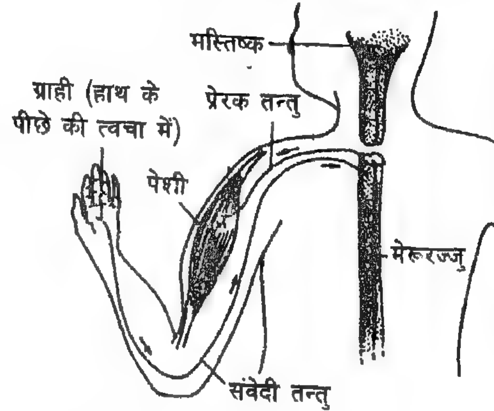


चित्र 19.9 *तंत्रिका कोशिका। (a) प्रेरक तंत्रि कोशिका। (b) संवेदी तंत्रि कोशिका। (c) बहुध्रुवीय तंत्रि कोशिका।*

जिसे **अंतग्रथन** (सिनेप्स) कहते हैं। उदाहरणत: जब आपके पैर के अंगूठे में दर्द हो रहा हो तब इस संवेद को सबसे पहले आपकी तंत्रिकोशिका के डेन्ड्राइड अथवा बहुशाखीय रचनाएं ग्रहण करती हैं तथा तंत्रि कोशिकाओं के तंत्रि कक्ष द्वारा इसका उसी प्रकार परिवहन होता है जिस प्रकार विद्युत के तारों में विद्युत प्रवाह। इसकी अनुक्रिया का प्रेषण प्रेरक तंत्रिका द्वारा पैर की पेशियों तक हो जाता है। जिसके फलस्वरूप पैर की पेशियां उचित अनुक्रिया करती हैं।

निम्नवर्गीय जन्तुओं जैसे हाइड्रा में एक ही तंत्रि-कोशिका संकेत को ग्रहण करके सारे शरीर में पहुंचाती है। लेकिन उच्च वर्गीय जीव जैसे मनुष्य में तंत्रिकोशिकाओं का एक बंडल (समूह) होता है जिसे तंत्रिका कहते हैं जो तंत्रिका केन्द्रों को विशेष अंगों से जोड़ती हैं। इन जीवों के केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र में एक मस्तिष्क तथा मेरु रज्जु होता है (चित्र 19.8)। ये समन्वय केन्द्र संकेत को ग्रहण करके उचित कार्यवाही करते हैं। अनुक्रिया करने से पहले कुछ संकेतों का विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए प्रश्न का उत्तर देने में अथवा सामान्य सोच-विचार के लिए। इन उदाहरणों में मस्तिष्क संकेत का विश्लेषण करता है, संदेश पर कार्यवाही करता है तथा संचित संदेशों का उपयोग करता है और उसके बाद अनुक्रिया या उत्तर देता है। कुछ ऐसी भी अनुक्रियाएं हैं जो तुरन्त होती हैं और उसे मस्तिष्क में जाने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी अनुक्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रियाएं कहते हैं। इसमें मेरुरज्जु ही अनुक्रिया करता है। आंखों का झपकना, छींक अथवा खांसी आना सभी प्रतिवर्ती क्रियाएं हैं जो कि किसी बाहरी अवांछनीय कणों के आँख, कान तथा गले में जाने मे होती है। प्रतिवर्ती क्रिया का मार्ग निम्न है—

उद्दीपन→ ग्राही अंग→ संवेदी तंत्रिका→ मेरुरज्जु→ प्रेरक तंत्रिका→ पेशीय क्रिया

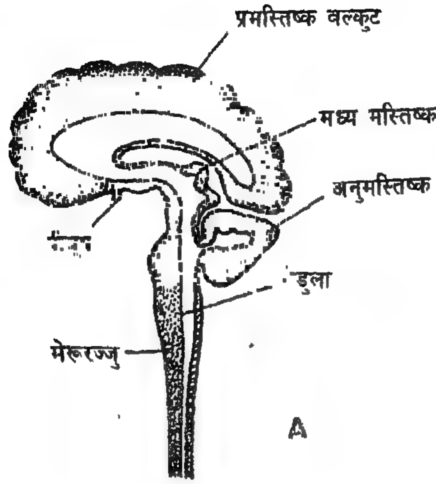


चित्र 19.10 प्रतिवर्ती क्रिया तथा उसका पथ।

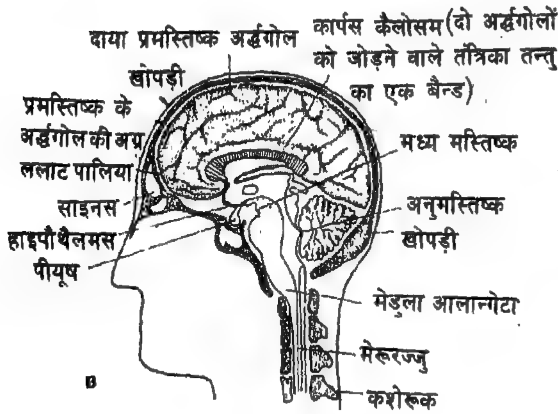
चित्र 19.10 में प्रतिवर्ती लक्षणों का मार्ग दिखाया गया है कि यदि हाथ के पिछले भाग में पिन चुभ जाए तो किस प्रकार हाथ शीघ्र हट जाता है।

मस्तिष्क मेरुरज्जु का बढ़ा हुआ भाग है (चित्र 19.11 a)। इसके तीन स्पष्ट भाग होते हैं —**प्रमस्तिष्क वल्कुट** जो मस्तिष्क के ऊपरी आधे भाग में होता है। इसलिए इसे **अर्धगोला** कहते हैं। मस्तिष्क का यह भाग बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह चेतनशील होता है तथा सूचनाएं संचित करता है।

अनुमस्तिष्क, जो कि सिर के पीछे नीचे की ओर रहता है, यह सही-सही गतियों को नियंत्रित तथा समन्वित करता है। लम्बा भाग जो

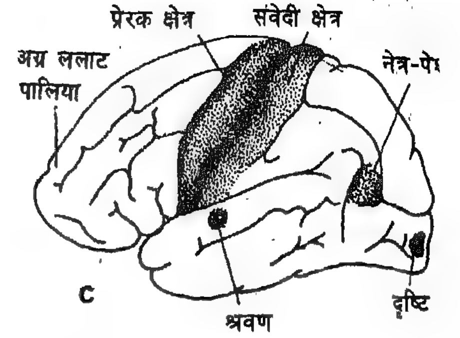


चित्र 19.11 (a) मस्तिष्क मेरुरज्जु का बढ़ा हुआ भाग।



चित्र 19.11 (b) मस्तिष्क के विभिन्न भाग।

मेरुरज्जु से जुड़ा रहता है उसे **मेडुला आलान्गेटा** कहते हैं। यह हृदय की धड़कन, रुधिर



चित्र 19.11 (c) बाएं अर्द्धगोले में क्षेत्रों की स्थिति।

वाहिकाओं तथा श्वसन – अधिकांश प्रतिवर्ती क्रियाओं एवं अनैच्छिक गतियों का नियंत्रण करता है। चित्र 19.11b में मस्तिष्क के सभी भागों को दिखाने के लिए सिर की काट दिखाई गई है। मनुष्य के मस्तिष्क में सबसे महत्वपूर्ण भाग प्रमस्तिष्क है जिसे विस्तार से चित्र 19.11c में दिखाया गया है। प्रमस्तिष्क के विशेष भाग शरीर के विशेष भागों को नियंत्रित करते हैं जबकि गोलार्द्धों में सूचनाएं तथा अनुमान संचित रहती हैं। ये चेतना, प्रवीणता, सोच-विचार आदि के लिए उत्तरदायी है। जिन जन्तुओं में प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध अधिक विकसित नहीं होता, वे अधिक बुद्धिमान नहीं होते तथा सहज व्यवहार द्वारा कार्य करते हैं।

सारांश में मस्तिष्क के विभिन्न कार्य हैं:–

(a) सभी संवेदी अंगों से संदेश ग्रहण करना।

(b) इन संकेतों (सिग्नलों) का उत्तर देने के लिए सूचनाओं को उचित कार्यवाही के लिए प्रेरक तंत्रिका द्वारा पेशियों तथा ग्रंथियों में भेजना।

(c) विभिन्न संवेदी अंगों से प्राप्त उद्दीपनों तथा शरीर की क्रियाओं का समन्वय करना।
(d) चेतना तथा ज्ञान को सूचना के रूप में संग्रह करना और पिछले अनुभवों के आधार पर व्यवहार में परिवर्तन करना। मस्तिष्क का यही वह कार्य है जो मस्तिष्क को सोच-विचार तथा चेतना का अंग बनाता है।

कल्पना करिये यदि हमारा प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध पूर्ण रूप से विकसित न होता तो क्या होता।

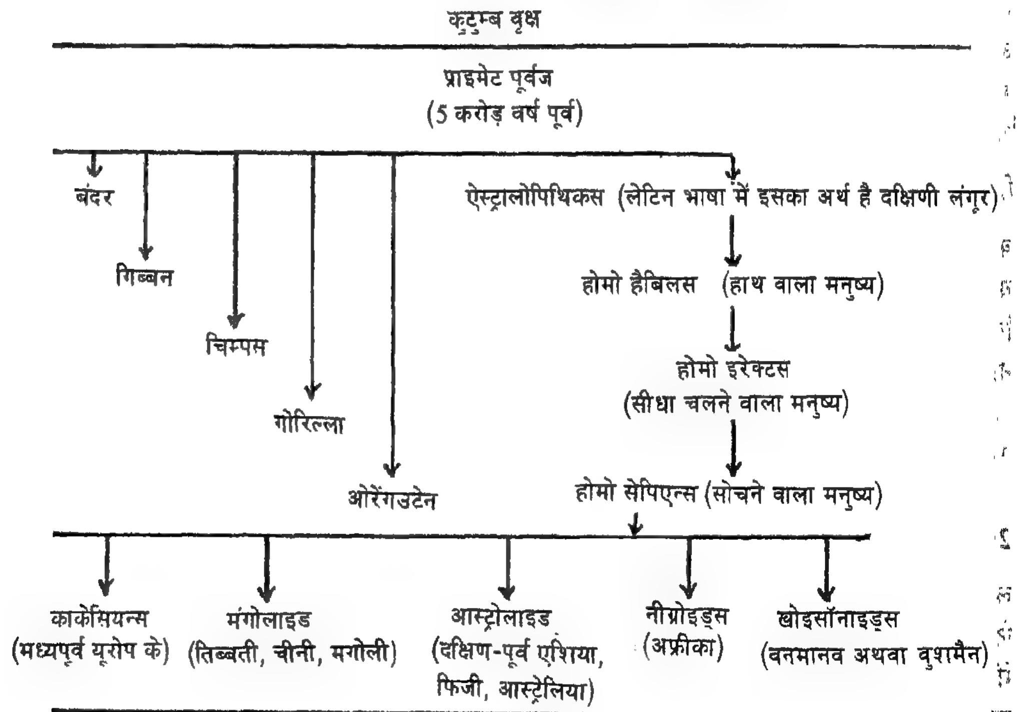
प्रश्नावली

1. अलैंगिक जनन की विभिन्न विधियाँ कौन-कौन सी हैं?
2. कलम क्या है तथा स्कन्ध क्या है? वे दोनों रोपण में कैसे मिलती हैं?
3. पौधों में ऊतक संवर्धन क्या है?
4. उभयलिंगी क्या है? इसके दो उदाहरण दीजिए।
5. परागण से आरम्भ करके पौधे में बीज बनने तक सभी अवस्थाएं बताइये।
6. बाह्य निषेचन तथा भीतरी निषेचन का क्या अर्थ है? परिनिषेचन तथा स्वनिषेचन में क्या अंतर है?
7. होमियोस्टेसिस क्या है?
8. ऑक्सिन, जिबरेलिन तथा एब्सेसिक एसिड के क्या कार्य हैं?
9. हमारे शरीर में कुछ हॉर्मोनों द्वारा होने वाले पुनर्निवेश नियंत्रण का संक्षिप्त वर्णन करिए?
10. प्रतिवर्ती क्रिया जैसे छींक आना, में होने वाली घटनाओं का मार्ग बताइये।
11. मस्तिष्क के विभिन्न कार्य क्या हैं?
12. मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा उनके कार्यों का वर्णन करिये।

मानव

भूमिका

आपकी उत्पत्ति कैसे हुई? आपके माता पिता से। और उनकी उत्पत्ति? उनके माता पिता से। यदि हम इस तरह अपने पूर्व इतिहास का अवलोकन करें तो हम दृढ़ता से कह सकते हैं कि हमारे पूर्वज हैं। मनुष्य के वास्तविक पूर्वज (प्रथम मनुष्य) कहां से आये? इस पहेली का उत्तर हमें जीव विज्ञान से मिलता है। लगभग 100 वर्ष पहले इंग्लैंड के एक जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन



चित्र 20.1 मनुष्य का कुटुम्बी चित्र।

ने कुछ अद्भुत सुझाव दिये। उन्होंने कहा कि मनुष्य, बन्दर और लंगूर के पूर्वज एक ही हैं। इन सौ वर्षों में डार्विन के विचारों की पुष्टि की जा चुकी है। मनुष्य की उत्पत्ति लंगूरों से हुई है जिन्हें हम **प्राइमेट्स** कहते हैं। प्राइमेट् पूर्वजों से बहुत सी शाखाएँ निकली। चित्र 20.1 में प्राइमेट्स के कुटुम्ब वृक्ष को दिखाया गया है। इस चित्र से स्पष्ट होता है कि मानव बन्दरों, गोरिल्लों और चिम्पांजी के सम्बन्धी हैं।

यह कुटुम्बी वृक्ष कैसे बनाया गया। यह वृक्ष धरती खोदने पर मिली हुई **हड्डियों**,कंकालों और दाँतों और ऐसे ही जीवाश्मों (fossil) के अध्ययन से बनाया गया है। उनकी आयु का सही-सही अनुमान लगाया गया और उनकी रचनाओं की मानव से तुलना की गई। इससे हमें उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त हुआ।

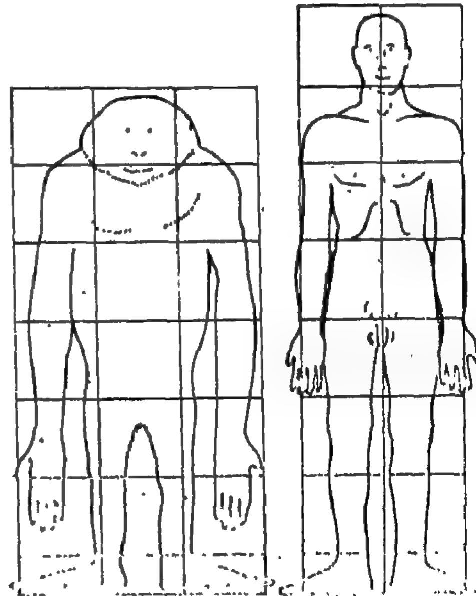
क्रियाकलाप — 1

क्या आप अपना कुटुम्बी वृक्ष बना सकते हैं? इस कुटुम्ब वृक्ष में आप अपने को सबसे नीचे दिखाइये ठीक उसी प्रकार जैसे चित्र 20.1 में नीग्रो अथवा कार्केसियन से आरम्भ किया गया है अपने भाइयों, बहनों, चाचा, चाचियों को भी शामिल करें।

20.1 मानव शरीर की रचना

लंगूर तथा गोरिल्ला हमारे समान हो सकते हैं लेकिन हमारी बनावट इनसे भिन्न है। चित्र 20.2 में लंगूर तथा मनुष्य में तुलना की गई है। उनमें कुछ अन्तर निम्नलिखित हैं:

1. लंगूर के हाथ उसके घुटनों से नीचे तक पहुंचते हैं जबकि मनुष्य के हाथ छोटे होते हैं। लंगूर चार टांगों पर चलता है और अपना संतुलन हाथ की अंगुलियों के जोड़ों पर बनाये रखता है परन्तु मनुष्य सीधा चलता है। इसलिए इसे **द्विपादी** कहते हैं। लंगूर के पैर किसी चीज को ऐसे पकड़ सकते हैं जैसे कि मनुष्य के हाथ। इस प्रकार लंगूर अपने चारों पैरों पर अपना संतुलन बनाता है। मनुष्य के पांव एक दृढ़ प्लेटफार्म की तरह काम करते हैं तथा संतुलन बनाये रखने में तथा सीधा चलने में सहायक होते हैं।
2. लंगूर का अंगूठा छोटा होता है जबकि मनुष्य का अंगूठा अधिक विकसित होता है। मनुष्य का अंगूठा हाथ की दूसरी



चित्र 20.2 मनुष्य तथा लंगूर के शारीरिक गुणों की तुलना।

अंगुलियों को दबा सकता है इससे वह अपने हाथ को बहुत से कामों के लिये चतुराई से उपयोग कर सकता है। मनुष्य के इस लाभ को कुशलता (dexterity) कहते हैं। वह लंगूरों की अपेक्षा छोटी छोटी वस्तुओं को भी अच्छी तरह से पकड़ सकता है तथा उनका प्रयोग कर सकता है।

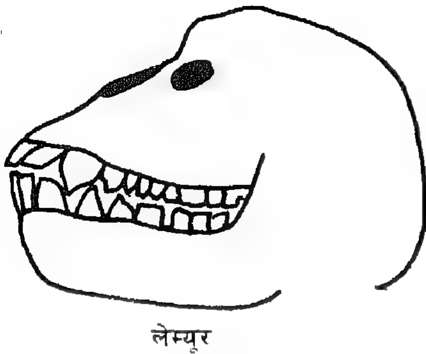
क्रियाकलाप – 2

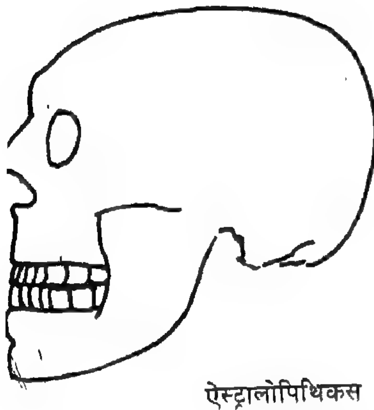
अपने अंगूठे का उपयोग न करते हुए–
पेंसिल पकड़िये।
अपने मित्र से हाथ मिलाइये।
अपनी कमीज के बटन बंद कीजिए।
पानी से भरे हुए गिलास को एक हाथ से उठाइये।
आपको अपने अंगूठे का महत्व पता लग जाएगा।

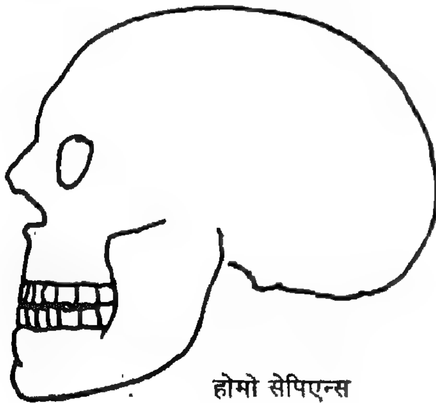
3. चित्र 20.3 में लेम्यूर, **एस्ट्रालोपिथीकस** तथा **होमोसेपिएन्स** को दिखाया गया है। लेम्यूर छोटे बन्दर की तरह होता है और उसकी पूंछ लम्बी होती है। यह पेड़ों पर रहना पसन्द करता है तथा प्रायः रात को बाहर निकलता है। **होमोसेपिएन्स** एक लंगूर है जो भूमध्य रेखा के दक्षिण में पाया जाता है। **होमोसेपिएन्स** सोच विचार करने वाले मनुष्य हैं जैसे मैं और आप। लेम्यूर सबसे प्राचीन हैं। पृथ्वी पर इनकी उत्पत्ति 5 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। दक्षिणी लंगूर की उत्पत्ति 2 करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी जबकि मनुष्य की उत्पत्ति 2 लाख वर्ष पूर्व हुई। लेम्यूर की शरीरात्मक रचना बड़ी रुचिकर थी। नाक के नथुने छोटे थे। उसकी आंखें बड़ी थीं और दोनों के बीच में काफी दूरी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि लेम्यूर नाक की अपेक्षा अपनी आंख का उपयोग अच्छी तरह कर सकता था। इसकी देखने की शक्ति सूंघने की शक्ति से अधिक थी (लेम्यूर में कोई पंजे नहीं होते थे लेकिन उसकी अंगुली पर नाखून होते थे। उसके एक छोटा सा अंगूठा भी होता था)।

   अब **एस्ट्रालोपिथीकस** के कपाल को देखो। इसके दांत हमारे दांतों की तरह हैं। इसके नथुने लेम्यूर की तरह नहीं है। यह एक नाक की तरह दिखाई देते हैं। चेहरे का उभार कुछ कम है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके मस्तिष्क का साइज लेम्यूर के मस्तिष्क से बड़ा है। जब हम **होमोसेपिएन्स** को देखते हैं तो पता चलता है कि उसके दाँत छोटे हैं और क्रमबद्ध हैं। जबड़ा तथा नाक छोटी है, मस्तिष्क का साइज सबसे बड़ा है। मनुष्य, जबड़े अथवा नाक की अपेक्षा मस्तिष्क का अधिक उपयोग करना सीख गया है। मनुष्य के यह गुण अन्य जन्तुओं से बहुत भिन्न हैं।

4. मनुष्य के कपाल पर स्थित आंखों का अन्तर उसको साफ देखने में तथा दूरी का अनुमान लगाने में सहायता करता है।
5. मनुष्य में रंग देखने की क्षमता होती है। अन्य बहुत से जानवर रंग नहीं देख सकते इसका कारण यह है कि मनुष्य की आंखों में विशेष प्रकार की कोशिकाएं होती हैं जो रंगभेद के प्रति संवेदनशील होती हैं।
6. बहुत से जानवरों का जननकाल ऋतु के अनुसार होता है। आपको शायद पता होगा कि कुत्ते का जननकाल वर्ष के कुछ ही समय में होता है। लेकिन मनुष्य का जनन







चित्र 20.3 लेम्यूर, ऐस्ट्रालोपिथीकस तथा होमोसेपिएन्स की कपाल (खोपड़ी)।

काल सारा वर्ष चलता रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य को अन्य जानवरों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त हैं। ये लाभ मनुष्य में शनैः शनैः आये हैं अचानक नहीं। यह लेम्यर, लंगूर तथा मनष्य में तलना करने पर स्पष्ट हो जाता है। मनुष्यों को सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह अपने मस्तिष्क का उपयोग कर सकता है। तालिका 20.1 में विभिन्न जानवरों के मस्तिष्क के साइज को दिखाया गया है। इस तालिका से उनके मस्तिष्क के भार तथा शरीर के भार के अनुपात में तुलना की जा सकती है। इस अनुपात से पता लगेगा कि किसी जानवर का मस्तिष्क उसके शरीर की अपेक्षा कितना अधिक विकसित होता है।

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि सभी जानवरों की अपेक्षा मनुष्य में मस्तिष्क तथा शरीर के भार का अनुपात सबसे अधिक होता है। इस अनुपात से जन्तुओं की बुद्धिमता का मोटे तौर पर अनुमान लगाया जा सकता है। किसी भी स्पीशीज में मस्तिष्क का एक भाग शरीर के कार्यों का समन्वय तथा नियंत्रण करता है। ऐसा चूहे जैसे छोटे जानवर में भी होता है। इसी कारण चूहे में यह अनुपात अनुमान से अधिक है लेकिन हमें भेड़िये, चिम्पांजी तथा मनुष्य की भी तुलना करनी चाहिए। इन सभी के शरीर का भार लगभग बराबर है, फिर भी मनुष्य में मस्तिष्क तथा शरीर के भार का अनुपात सबसे अधिक है। इसीलिए मनुष्य में सबसे अधिक विकसित मस्तिष्क होना चाहिए। इसी विकसित मस्तिष्क के कारण मनुष्य सोचता है, अपने विचारों को एकत्र करता है और निर्णय लेता है। मनुष्य में कल्पना करने की शक्ति

अधिक होती है इसीलिए मनुष्य को सोच विचार वाला जानवर (Thinking animal) कहते हैं।

मनुष्य के मस्तिष्क का विकास अन्य संवेदी अंगों की कीमत पर हुआ है। उदाहरण के लिए, उत्पत्ति के दौरान मनुष्य की घ्राण शक्ति कम हो गई जबकि कुत्ते में बहुत अधिक होती है। मनुष्य के कान चमगादड़ की अपेक्षा केवल लघु तरंगों वाली आवाज को सुन सकते हैं। मनुष्य घास, भूसा आदि न तो खा सकता है और न ही इसे पचा सकता है जबकि गाय यह सब कुछ कर सकती है। क्या आप ऐसे कार्यों की कोई सूची बना सकते हो जिन्हें मनुष्य नहीं कर सकता जबकि अन्य जानवर कर सकते हैं?

तालिका 20.1

कुछ जानवरों के शरीर तथा मस्तिष्क का भार

स्पीशीज	*शरीर का भार*	*मस्तिष्क का भार*	*मस्तिष्क/शरीर का अनुपात*
चूहा	200 g	2.5 g	1 : 80
भेड़िया	80 kg	150 kg	1 : 530
चिम्पांजी	80 kg	300 g	1 : 265
मनुष्य	70 kg	1.5 kg	1 : 46

20.2 मनुष्य वातावरण का समुपयोजन (exploitation) करता है

आदि मानव: हमने मानव में पाई जाने वाली विभिन्न कमियों की एक सूची बना ली है। फिर भी मनुष्य को जीवित रहना है और फलना फूलना है। इस प्रक्रिया में मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए वातावरण की उन वस्तुओं का समुपयोजन किया है जो उसके लिए लाभकारी हैं। 50,000 वर्ष पूर्व तक मनुष्य भी अन्य स्तनधारियों की तरह ही "जंगली" था। यहां "जंगली" शब्द से तात्पर्य है कि मनुष्य कभी भी एक स्थान पर नहीं रहा और न ही उसने सामुदायिक जीवन व्यतीत किया। बल्कि मनुष्य झुंड बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहते थे। घूमने का मुख्य उद्देश्य आश्रय तथा भोजन की तलाश तथा भक्षकों तथा अन्य खतरों से अपनी रक्षा करना था। मनुष्य के विकसित मस्तिष्क के कारण उसके कार्य करने की क्षमता में बढ़ोतरी हुई।

सबसे प्रचीन महत्वपूर्ण बात थी औजारों का बनाना। इस काम के लिए सोचने (मस्तिष्क से सोचने) तथा हाथ से काम करने की आवश्यकता होती है। हम जानते हैं कि लंगूर बहुत ही निम्न स्तर का औजार बना सकता है। लेकिन औजार बनाने की तकनीक में उन्नति**एस्ट्रालोपिथीकस**के समय में हुई। इसी काल में खाने की आदतों में भी परिवर्तन हुए। पहले वाले लंगूर शाकाहारी थे

लेकिन **एस्ट्रालोपिथीकस** मांसाहारी थे। खाने की आदत के इस परिवर्तन का अर्थ था सुव्यवस्थित ढंग से शिकार करना। इस क्रियाकलाप को करने के लिए सामाजिक जीवन तथा संचार माध्यम का विकास करना आवश्यक था। विशेष हथियारों द्वारा योजना बनाना तथा संगठित होना बहुत आवश्यक था।

भाषा द्वारा संचार करने में मस्तिष्क का बहुत बड़ा योगदान है। मनुष्य का मस्तिष्क सब जानवरों के मस्तिष्कों से अधिक विकसित है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि मौखिक संचार प्रणाली सबसे पहले मनुष्य में ही विकसित होनी आरम्भ हुई।

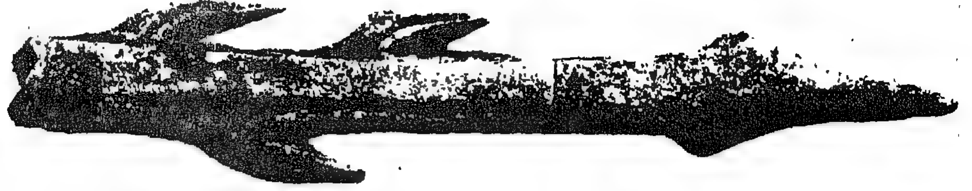
शिकार पर आधारित जीवन निर्वाह एक ही स्थान पर नहीं हो सकता था। मनष्य जिसने अब समूह में रहना शुरू कर दिया था को भोजन की तलाश में घूमना पड़ता था। वास्तव में यह प्रवासी जीवन 10 लाख वर्ष पूर्व आरम्भ हो गया था। मनुष्य सवाना (Savannah) से उत्तरी अफ्रीका, चीन, इण्डोनेशिया तथा उत्तरी यूरोप की ओर चले गए थे। लगभग इसी काल में मनुष्य ने न केवल आग की खोज की, बल्कि उसने आवश्यकता पड़ने पर आग जलाना भी सीख लिया था। आग जलाने की विद्या मनुष्य के इतिहास में एक और महत्वपूर्ण घटना है। आग द्वारा मनुष्य मौसम तथा जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करते थे तथा ये खाना पकाने का साधन भी थी।

शिकार के लिए विशेष प्रकार के हथियारों की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए मनुष्य ने कुल्हाड़ी तथा पहिए का विकास किया। वे कुल्हाड़ी से जानवरों के मांस के छोटे छोटे टुकड़े करते थे और पहियों की सहायता से उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुंचा देते थे। वास्तव में पहिए की खोज मनुष्य की उन्नति में बहुत ही महत्वपूर्ण है।

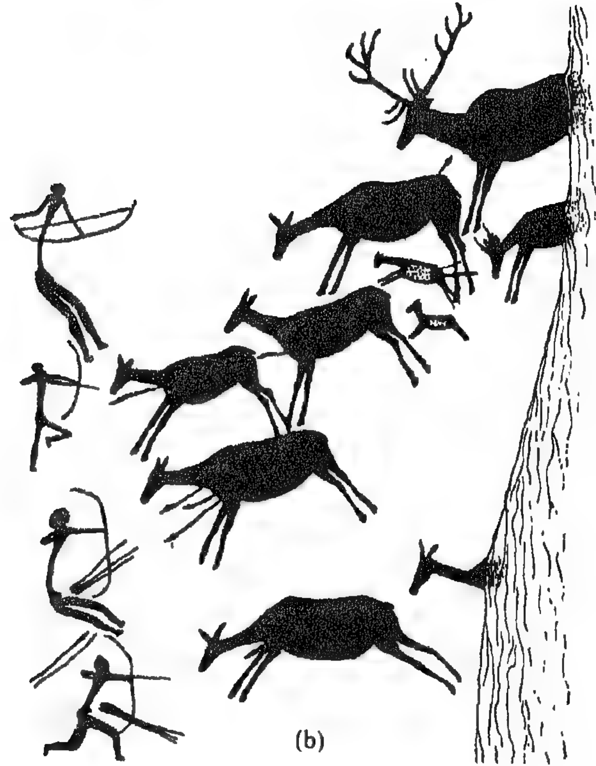
मनुष्य की पूर्व तकनीकी मुख्यतः आग, औजार, संवहन तथा भाषा थी। इन सभी तकनीकियों से मनुष्य भोजन, आश्रय, कपड़ा तथा सुरक्षा प्राप्त कर सका। प्राचीन काल में मनुष्य गुफाओं में रहता था, जानवरों की खाल और पेड़ों की छाल से शरीर ढकता था और समूह बनाकर रहता था। आदि मानव ने न केवल इस आदिम तकनीकी का उपयोग ही किया बल्कि इसका आभारी भी रहा है। इससे इसे आराम के लिए तथा जीवन के अन्य मामलों के बारे में विचार करने के लिए समय मिला। यह कई स्थानों से प्राप्त चित्रकारी से भी सिद्ध होता है। इनमें से कुछ भारत में मध्य प्रदेश के जबलपुर के समीप स्थित पचमढ़ी की गुफाओं में है। चित्र 20.4a में हारपून नामक हथियार के जीवाश्म (फॉसिल) दिखाए गए हैं। ये हथियार रेंडियर के सींगों से बनाए गए थे। हारपून पर कांटों की दो कतारों को देखिए। ऐसा लगता है कि हारपून पर कांटों की दो कतारें लगभग 20,000 वर्ष पूर्व में ही बनाई गई थी। चित्र 20.4b में 10,000 वर्ष पूर्व की एक गुफा की चित्रकारी दिखाई गई है। तीर कमानों की खोज भी हो गई थी। मनुष्यों के झुंड के झुंड मिलकर शक्तिशाली जानवर को भी मार देते थे। लगभग इसी काल में मनुष्य ने जानवरों को पालतू बनाना भी आरम्भ कर दिया था, उदाहरण के लिए कुत्ता, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, हिरण, घोड़ा आदि।

कृषि तथा जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन

तकनीकी आविष्कार से मनुष्य अपने उपयोग के



(a)



(b)

चित्र 20.4 (a) कांटों की दो कतारों वाला हारपून। (b) रेंडियर के शिकार की चट्टान पर पेंटिंग। यह पूर्वी स्पेन की गुफा से है। देखो तीर कमान के उपयोग की खोज। यह भी देखो कि अब तक शिकार झुंड के रूप में करने की प्रथा हो गई थी। (a) तथा (b) दोनों ही 30,000 वर्ष पुराने हैं।

लिए पर्यावरण का दोहन (समुपयोजन) करने में सक्षम हो गया था। इस विकास से उसके जीवन में सांस्कृतिक अनुकूलन हुआ। यायावर आखेटी जीवन का अंत हुआ तथा मानव एक स्थान पर टिक कर रहने लगा था। शिकार करने का मुख्य उद्देश्य केवल भोजन प्राप्त करना ही नहीं था। जन्तुओं की खाल से तंबू बनाए जाते थे। उनके खुरों तथा फरों से कपड़े तथा अन्य वस्तुएं बनाई जाती थीं, सींगों से हथियार तथा अन्य औजार बनाए जाते थे। पालतू जानवरों का उपयोग घरेलू कामों तथा सामान ढोने में किया जाने लगा।

चावल तथा गेहूं का उपयोग मुख्य भोजन के रूप में होने लगा। लेकिन सब चीजें जंगली पौधों से प्राप्त होती थी। ईसा से लगभग 8000 वर्ष पूर्व गेहूं की नई किस्म उत्पन्न हुई जिसका बीज भूसे से चिपका रहता था। हाथ से छिलके को हटाकर इसके बीजों को उगाना पड़ता था। गेहूं की इस नई किस्म को संचित कर सकते थे और उसे किसी भी स्थान पर आवश्यकतानुसार उगा सकते थे। इस खोज के साथ संगठित रूप से खेती-बाड़ी का आरम्भ हुआ और इस तरह कृषि का आरम्भ हुआ। जब कृषि व्यावहारिक रूप में आई तब फिर मनुष्य के सामूहिक जीवन में परिवर्तन आया। छोटे-छोटे समूहों के स्थान पर बड़े-बड़े समुदाय बने, नहरें बनाई गईं, अनाजों का संग्रह करना आरम्भ हुआ और मनुष्य पशुचारणिक बन गया। वास्तव में कृषि ने मनुष्यों को समुदायों, कस्बों, प्रांतों तथा राष्ट्र में संगठित किया। इसके बाद मनुष्य ने पर्यावरण का अधिक समुपयोजन करना शुरू कर दिया।

कृषि में काम आने वाले औजार विशेष प्रकार के थे। उनके आकार, साइज और कठोरता आदि भी भिन्न थी और वे विभिन्न प्रकार के थे। मिट्टी को पलटने, खेत में हल चलाने, निशान लगाने, बीज बोने, फसल काटने, फटकारने तथा संग्रह करने के लिए विभिन्न प्रकार के औजारों की आवश्यकता होती थी। इन सब के लिए नई उपयुक्त वस्तुओं अथवा सामग्रियों की खोज आवश्यक हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य को तकनीकी उन्नति की रफ्तार पाषाण काल, कांस्य काल, लोह काल आदि में अधिक है। यायावर या खानाबदोशी जीवन से ग्रामीण जीवन के परिवर्तन में लगभग दस लाख वर्ष लग गये। लेकिन आदिम कृषि से मोहनजोदाड़ों अथवा हड़प्पा अथवा लोथल संस्कृति तक पहुंचने में कुछ हजार वर्ष ही लगे। घरेलूकरण तथा सामुदायिक जीवन से मनुष्य ने काफी कुछ सीखा और नये नये आविष्कार हुए।

क्रियाकलाप – 4

भारत में ऐसे संग्रहालय कहाँ हैं जिनमें भारत की पुरातन वस्तुएं दिखाई गई हैं? अपने घर, विद्यालय अथवा कस्बे के पास यदि कोई संग्रहालय स्थित हो तो वहां जाइए। आपको वहां जाने पर रुचिकर अनुभव प्राप्त होगा।

अगला महत्वपूर्ण कदम था भवन निर्माण। भवन निर्माण की सामग्री थी पत्थर तथा उनको जोड़ने के लिए चूने का उपयोग होता था। ईसा से 2500 वर्ष पूर्व बने पत्थरों के भवनों, कुओं, तालाबों आदि के खण्डहर लेबनान, सीरिया तथा भारत उपमहाद्वीप में मोहनजोदाड़ों, हड़प्पा तथा लोथल में देखे जा सकते हैं।

तालिका 20.2 में मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर

पूर्व सांस्कृतिक तकनीकी विकास को दिखाया गया है। आप देखेंगे कि शुरु-शुरू में तकनीकी विकास में बहुत अधिक समय लगा है। लेकिन प्लीस्टोसीन काल के आने के बाद इसकी विकास दर बहुत तेजी से बढ़ी थी। विकास दर मध्यपाषाणी युग से एशिया माईनर तक और भी तीव्र थी। यह भी देखिए कि मनुष्य को तकनीकी खोज करने तथा उसे व्यावहारिक बनाने में लाखों वर्ष लग गए। उसके बाद तकनीकी में उन्नति बड़ी तेजी से हुई। मनुष्य का सांस्कृतिक अनुकूलन जैविक अनुकूलन की अपेक्षा अधिक शीघ्र हुआ। अगले अध्याय में आप देखेंगे कि मनुष्य ने केवल 500 वर्ष में ही कितनी तेजी से पर्यावरण का समुपयोजन किया है। अब हम अन्तरिक्ष में जा सकते हैं। तारामंडल तथा समुद्र तल से सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं और परमाणु नाभिक से ऊर्जा (शक्ति) प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य ने होमोइरेक्टस काल के बाद से अब तक बहुत उन्नति की है।

शिक्षा

विकसित मस्तिष्क होने के कारण मनुष्य को बहुत लाभ हुआ है। कीट जैसे चीटीं अथवा दीमक बहुत बड़े मिट्टी के बिल बना लेते हैं। बया पक्षी पौधे की पत्तियों, तिनकों आदि से बहुत सुंदर घोंसला बनाते हैं। इसी प्रकार अन्य जीवों के उदाहरण भी दे सकते हैं जिन्होंने पर्यावरण का समुपयोजन किया है। लेकिन ये सभी क्रिया-कलाप वंशागत अथवा आनुवंशिक हैं। केवल मनुष्य जो विचारशील जीव है ने ही सोच समझ कर पर्यावरण का समुपयोजन किया है। मनुष्य में यह विचार कभी भी क्रोमोसोम अथवा जीन द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में नहीं जाते हैं। उनका संचार होता है और मस्तिष्क उन्हें ग्रहण करता है। पर्यावरण का समुपयोजन मनुष्य ने बड़ी बुद्धिमता से किया है। वह किसी विषय पर विचार करता है उसकी समस्याओं का विश्लेषण करता है और उनका समाधान ढूंढता है। इस क्रिया के कुछ उदाहरण हैं पहिया, आग, हथकरघा, धातु, औजार, घुड़सवारी, नौका तथा समुद्री जहाज।

जब विचार अधिक हुआ तब पर्यावरण का समुपयोजन भी अधिक हुआ। आजकल यह सूक्ष्म स्तर पर न होकर बड़े पैमाने पर हो गया है। आबादी बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरण का समुपयोजन सारे संसार में हो रहा है। एक दृष्टि से देखा जाए तो यह लाभदायक हो सकता है। उदाहरणतः किसी वातावरण में उचित तकनीकी का उपयोग करके मनुष्य जीवित रह सकता है और किसी भी स्थान जैसे मरुस्थल अथवा टापु पर शहर बसा सकता है। अथवा भारत में बनी बीमारी की किसी दवा को संसार में कहीं पर भी भेजा जा सकता है। यदि इसको दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो बहुत बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का समुपयोजन हानिकारक भी हो सकता है। इसका एक उदाहरण है पहाड़ों में जंगलों का काटना। 50 वर्ष पहले हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों, उत्तरी बंगाल अथवा उत्तर पूर्वी भारत में वृक्षों का काटना अधिक नहीं था लेकिन आजकल इन क्षेत्रों में वृक्ष बहुत अधिक संख्या में काटे गए हैं। याद रखिए वृक्ष को पूर्ण विकसित होने में कई वर्ष लग जाते हैं लेकिन काटने में एक दिन से भी कम समय लगता है। ये वृक्ष पहाड़ों पर उचित जलवायु, मिट्टी की संरचना तथा पारिस्थितिक स्थिरता बनाए रखते हैं। इन जंगलों के नष्ट होने से मिट्टी

तालिका 20.2

मनुष्य का शिल्प विज्ञान (तकनीकी)—ईसा से 3000 वर्ष पूर्व तक

युग	*समय*	*मनुष्य*	*तकनीकी विकास*
पूर्व पाषाण काल	1,00,000 वर्ष से भी पूर्व	होमोइरेक्टस जावा मानव, पीकिंग मानव	औजार बनाने में पत्थर का उपयोग। कुल्हाड़ी बनाने में हड्डी का उपयोग। खाना पकाना आरंभ हुआ।
गुफाओं में रहना	50,000 वर्ष से 100,000 वर्ष पूर्व	निअन्डर थल मनुष्य रोडेशियन मानव	मुर्दों को दफनाना, खाना पकाने में निपुणता, कला का उदय
हिम काल का अन्त	30,000 वर्ष पूर्व	प्लीस्टोसीन मानव	चाकू का फल, खोदने वाले औजार, कांटेदार हारपून, कला की वस्तुएं, जैसे नैकलेस, आभूषण आदि। जादुई कला तथा रीति रिवाज।
मध्य पाषाण काल	10,000 वर्ष से 8,000 ईसा वर्ष पूर्व	मीसोलिथिक मानव	मछलियां पकड़ने की विधियां, जंगली गेहूं तथा जौ, बकरी और भेड़ का जनन, कुत्तों को पालना, कृषि का आरम्भ होना।
नव पाषाण काल	6000-4000 ईसा वर्ष पूर्व	निओलिथिक मानव	कृषि, चीनी मिट्टी का सामान बनाना, कपड़ा, हथकरघे का विकास।
ताम्र काल	4000-3000 ईसा वर्ष पूर्व	सिंधु घाटी, सुमेरियन तथा इजिप्सीयन सभ्यता	सीसा, जस्ता, टिन तथा एन्टीमनी की खोज। कांसा तथा अन्य मिश्र धातुएँ, पहिए वाली गाड़ी, समुद्री जहाज, बहुमूल्य पत्थर, ताँबे के मिश्र धातुओं का उपयोग।

का अपरदन हो गया, वर्षा कम हो गई तथा जलवायु में परिवर्तन आ गया। नदियों ने अपना रास्ता बदल लिया और प्रायः बाढ़ आने लगी। पहाड़ टूट कर गिरने की दर बढ़ गई। चूंकि वर्षा कम हो गई इसलिए उत्तर प्रदेश तथा बिहार में सूखा पड़ने लगा।

आपने सुना होगा कि संसार में सबसे अधिक वर्षा मेघालय में स्थित चेरापूंजी नामक स्थान पर होती थी। दुर्भाग्यवश अब ऐसा नहीं है। मेघालय की पहाड़ियों पर अंधाधुंध वृक्षों की कटाई में वर्षा होने तथा जलवायु में परिवर्तन आया है। पर्यावरण की ऐसी हानि मनुष्य ने ही की है। संतुलन बनाए रखने के लिए सबसे अच्छी विधि है वहां पर वृक्षों का लगाना। आजकल वहां के निवासी तथा सरकार इस कार्य में लगे हुए हैं। प्रायः ऐसी हानि अपरिवर्तनीय भी बन सकती है। यह बड़े दुःख की बात है कि ऐसी हानि का जिम्मेवार मनुष्य है, जो कि एक विचारशील जन्तु है।

यह सर्वविदित है कि मनुष्य को अपने आराम तथा सुख सुविधा के लिए अपने आस-पास के पर्यावरण में स्थित संसाधनों का उपयोग करना पड़ता है। ऐसा करना अल्पबुद्धिमता होगी कि हम साधारण आदिवासी वाला जीवन व्यतीत करना शुरू कर दें। पहले के जीवन की बहुत सी कठिनाइयों ने ही बिजली, गाड़ियों, हवाई जहाज, टेलीफोन तथा कम्प्यूटर जैसे आवष्किारों का मार्ग प्रशस्त किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि हम नई तकनीकों को अपनाने से पहले यह पता लगा लें कि इनका पर्यावरण पर क्या बुरा प्रभाव पड़ सकता है। यह कार्य इतना आसान नहीं है। दाढ़ी बनाने वाले साबुन व क्रीम का उदाहरण ले सकते हैं। भारत में प्रायः सामान्य विधि यह है कि दाढ़ी बनाने में झाग बनाने के लिए हम साबुन की टिक्की अथवा शेविंग क्रीम तथा ब्रुश का उपयोग करते हैं। यूरोप तथा अमेरिका में दाढ़ी बनाने वाला तैयार झाग डिब्बे में बन्द मिलता है। डिब्बे में साबुन से झाग पैदा करने के लिए कोई रसायन जिसे "ऐरोसॉल" कहते हैं मिलाया जाता है। जब आप डिब्बे को ऊपर से दबाते हो तब झाग बाहर निकलता है। इस झाग को ब्रुश की सहायता के बिना मुंह पर लगाया जा सकता है। "ऐरोसॉल" का उपयोग न केवल साबुन में ही होता है बल्कि अन्य पदार्थों में भी होता है। लेकिन अभी हाल ही में पता चला है कि ऐरोसॉल हमारी पृथ्वी को प्रदूषित करता है। ये वायु मण्डल में स्थित ओजोन से अभिक्रिया कर उसे नष्ट कर देते हैं। ओजोन हमारी पृथ्वी का कवच है जो सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकता है। इस प्रकार ओजोन की कमी होने से पृथ्वी पर स्थित जीवों का जीवन खतरे में पड़ सकता है। जब "ऐरोसॉल" के हानिकारक प्रभाव का पता लगा तो उन देशों में इसके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। बहुत से देशों में तो इस रसायन के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। बहुत से वैज्ञानिक सुरक्षित ऐरोसॉल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

दूसरा उदाहरण है कीटनाशक तथा पीड़कनाशी (Pesticide) रसायन। ये रसायन फसलों को नष्ट करने वाले कीटों तथा पीड़ (Pest) को मार देते हैं। सारे संसार में इनके उपयोग से कृषि की पैदावार बढ़ी है। लेकिन अब कीटों की ऐसी नई किस्में उत्पन्न होती जा रही हैं जिन पर ये रसायन प्रभावकारी नहीं हैं। ये ऐसे रसायन नहीं है

जो प्राकृतिक रूप में मिलें। मिट्टी में पाए जाने वाले साधारण जीवाणु इनका अपघटन नहीं करते। और मनुष्य जब कीटनाशियों द्वारा प्रदूषित भोजन खाता है तो वह बीमार हो जाता है। कीटनाशियों के उपयोग से कीटों को मारकर उपज तो बढ़ा ली है लेकिन मनुष्य के स्वास्थ्य पर उनका बुरा प्रभाव पड़ा है। इससे हमने एक सबक तो सीख लिया है। अब प्रश्न यह है कि हम अधिक से अधिक लाभ कैसे प्राप्त करें और इसके दुष्प्रभावों को कैसे कम करें? अब ऐसे रसायनों को बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं जो कीटों को तो नष्ट कर दें, लेकिन अन्य जीवों को कोई नुकसान न पहुंचाए। ऐसे रसायन भी बनाए जा रहे हैं जिनका जैव अपघटन हो सके अर्थात् मिट्टी में स्थित जीवाणु उनको अपघटित करने में सक्षम हो।

किसी भी तकनीकी के उपयोग से लाभ तथा हानि दोनों होते हैं। सबसे अच्छी विधि तो वह है जिससे लाभकारी प्रभाव बढ़ें और हानिकारक प्रभाव कम हों। लेकिन ऐसा करना आसान नहीं है विशेष कर ऐसी परिस्थिति में जब इन रसायनों को बनाने के लिए धन अधिक लगा हुआ हो और अधिक लाभ कमाने की इच्छा हो। अब मुख्य झगड़ा है जल्दी लाभ कमाने तथा लम्बे समय तक पर्यावरण की सुरक्षा के बीच। सबसे अधिक हानि तभी होती है जब हमें जल्दी लाभ कमाने की इच्छा होती है। इस प्रकार पर्यावरण की रक्षा करने वाले संगठनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। यह संगठन पर्यावरण की काफी समय तक रक्षा हो सके ऐसे विचारों को अपनाते हैं। ये प्रत्येक तकनीकी के प्रभाव का विश्लेषण करते हैं और उसकी दूसरी विधि बताते हैं। भारत में लोगों की जागृति का बहुत ही क्रियाशील तथा सफल उदाहरण उत्तर प्रदेश के टिहरी क्षेत्र में रहने वाले ग्रामीण तथा केरल और अन्य प्रान्तों की नागरिक संस्थाएं हैं। टिहरी के ग्रामीणों ने अपना आन्दोलन चिपको के रूप में चलाया, उन्होंने उत्तर प्रदेश के हिमालय क्षेत्र के वनों के पेड़ों को कटने से बचाया और साथ ही साथ नये वृक्ष भी लगाए। केरल की संस्थाओं ने साइलैंट वैली क्षेत्र के प्राकृतिक संग्रह को नष्ट होने से बचाने के लिए प्रयत्न किया, और इसे भारत के भविष्य के लिए संरक्षित रखने में सहायता की।

प्रश्नावली

1. लंगूर से मनुष्य तक विकास में पूंछ के ह्रास का क्या योगदान है?
2. भेड़ तथा रीछ पर अधिक ऊन अथवा बाल क्यों होते हैं?
3. मनुष्य द्वारा ईसा से 5000 वर्ष पूर्व उपयोग किए गए 10 औजारों के नाम लिखिए। ये औजार किस पदार्थ से बनाए गए थे?
4. तकनीकी विकास (कांस्य काल से लेकर कम्प्यूटर तथा उपग्रह तक) तथा समय (ईसा से 4000 वर्ष पूर्व से लेकर सन् 2000 तक) के बीच एक ग्राफ बनाओ।

5. सारांश में लिखिए कि किस प्रकार कृषि लोगों को संगठित करने में एक तकनीकी समझी जाती है।
6. किसी भी तकनीकी के लाभ तथा हानि दोनों ही होते हैं। ऐरोसॉल, कीटनाशक अथवा कोई अन्य उदाहरण लेते हुए इस विषय पर लिखिए। यह भी बताइए कि इसको किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है?

विज्ञान, शिल्प विज्ञान और मानव

भूमिका

प्रातः काल उठने के तुरंत बाद से रात को सोने तक हमारे लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण भिन्न भिन्न कार्य करते हैं। वह बिस्तर जिस पर हम सोते हैं, वह अलार्म घड़ी जो हमें जगाती है, वह गिलास जिसमें पानी है, वह पुस्तक जिसको हम सोने से पहले पढ़ रहे थे, सभी मनुष्य द्वारा बनाए गए हैं। चट्टानें, फल तथा फूल कुछ ऐसी वस्तुएं हैं जो प्राकृतिक रूप में मिलती हैं। कुछ अन्य वस्तुएं जैसे प्लास्टिक तथा ईंटें मनुष्य द्वारा बनाई गई हैं। इन वस्तुओं तथा पदार्थों ने हमारे जीवन को अधिक आरामप्रद तथा आनन्दमय बना दिया है। इन्होंने हमारी कुछ अन्य लाभकारी, जटिल और आवश्यक उपकरणों को बनाने की कुशलता भी बढ़ा दी है। यह ज्ञान और कुशलता पिछले कई हजार सालों से इकट्ठी हो रही है। आइए विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान (प्रौद्योगिकी) के विकास की कुछ प्रमुख विशेषताओं पर विचार करें।

21.1 शिल्प विज्ञान तथा जीवन-परिवर्तन

पिछले अध्याय की तालिका 20.2 से ज्ञात होता है कि आदिकाल से 5000 वर्ष पूर्व तक प्रौद्योगिकी का किस प्रकार विकास हुआ। इसमें प्रत्येक प्रौद्योगिकी का एक मुख्य स्थान है। चाहे वह आग की खोज और उसका उपयोग हो, हथियारों का उपयोग हो या पशुपालन और कृषि। इसमें दो मुख्य बातें यह हैं--(1) प्रत्येक नई प्रौद्योगिकी से मनुष्य की जीवन चर्या तथा कार्य-कुशलताओं में परिवर्तन आता है, तथा (2) प्रत्येक प्रौद्योगिकी से किसी क्षेत्र के विकास की गति बढ़ती है। आइए कृषि के क्षेत्र से उदाहरण लेकर इन दो बातों का अध्ययन करें।

भोजन पौधों तथा जन्तुओं की मुख्य आवश्यकता है। लगभग 10,000 वर्ष पूर्व मनुष्य ने यह खोज कर ली थी कि कुछ विशेष प्रकार के पौधों को उगा कर भोजन का प्रबन्ध नियमित रूप से किया जा सकता है। कृषि की खोज से मनुष्य की जंगली पौधों से खाना एकत्रित करने की यायावर प्रकृति बदल गई। अब उसने समूह में रहकर खेती-बाड़ी द्वारा भोजन का उत्पादन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार से कृषि की प्रौद्योगिकी का आरम्भ हुआ और इसमें सुधार होने लगे। आदिम-औजारों तथा साधारण

विधियों द्वारा आदि मानव केवल गेहूं तथा कुछ फलों के पौधे ही उगाते थे। पुरातन औजारों तथा साधारण तकनीकियों की सहायता से मनुष्य या कृषक नियमित भोजन की उपलब्धि करते थे तथा अन्य कई लाभ भी उठाते थे।

कृषि का मुख्य लाभ यह है कि मनुष्य को अपना भोजन प्रतिदिन जुटाना नहीं पड़ता है। वह वर्ष में कई बार फसल काट कर संग्रह करता है जिससे भोजन की उपलब्धि नियमित रूप से हो सकती है और वह निश्चिंत होकर अन्य कार्य कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को फसल उपजाने के साधन तथा संग्रहण की विधियों का विकास करना चाहिए। मनुष्य ने जल्दी ही कुटिया बनाना सीख लिया था जिसमें वह रह सकता था तथा भोजन का संग्रह भी कर सकता था। कृषि के क्षेत्र में खेतों में काम करने के लिए मनुष्य ने पशुओं को पालतु बनाया और उन्हें प्रशिक्षित भी किया। बैलों, घोड़ों तथा अन्य पशुओं के उपयोग से कृषि के उत्पादन में वृद्धि हुई। मनुष्य ने यह भी खोज की कि अनाज संग्रह को कीटों से किस प्रकार बचाया जा सकता है। मनुष्य को सदियों से ही यह ज्ञात था कि अनाज को कीटों से बचाने के लिए धूप में सुखाकर बबूल, नीम तथा अन्य पौधों का उपयोग करना चाहिए। कुछ वर्ष पहले महाराष्ट्र में पूना के निकट इनाम गांव में की गई खुदाईयों से यह पता चला है कि मनुष्य 3000 वर्ष से भी अधिक पहले संग्रहण की इन विधियों का इस्तेमाल करता था।

हमने कृषि के बारे में काफी चर्चा की है क्योंकि इस चर्चा से हमें कृषि के विभिन्न पहलुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रौद्योगिकी से विकास की दर बहुत बढ़ गयी है। इसके साथ अन्य विधियों तथा सहायक प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। ये कुछ मुख्य पहलू हैं किसी भी बड़ी प्रौद्योगिकी के।

कृषि उद्योग से मनुष्य को एक महत्वपूर्ण संदेश प्राप्त हुआ है। इससे मनुष्य को पहली बार यह पता चला कि वह प्रकृति में भी हेर फेर कर सकता है। अब यह सम्भव हो गया कि मनुष्य किसी विशेष उद्देश्य के लिए योजना बनाकर पौधे उगा सके जैसे अनाज या सब्जियाँ। यह भी सम्भव हो गया कि पौधों को चारे के लिए उगायें जाए जो कि पालतू जानवरों के लिए उपयोग किया जाता है। पशुओं को पालतू बनाकर उसकी शक्ति को गाड़ी खींचने, हल चलाने पत्थर कूटने तथा कुएँ से जल खींचने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। जंगली पौधे हमारी सम्पदा या संसाधन नहीं हैं जबकि फसलें हमारी सम्पदा हैं। जंगली जानवर भी सम्पदा या संसाधन नहीं हैं जबकि पालतू पशु हमारी सम्पत्ति हैं। प्रौद्योगिकी द्वारा किसी असंसाधन (Non resource) को संसाधन (Resource) में परिवर्तित किया जा सकता है। कृषि, खाद्य पदार्थों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी है। इसमें बीज, पानी तथा मिट्टी संसाधन हैं। पशु पालन वह प्रौद्योगिकी है जिसमें पशु—जैसे दूध देने वाले पशु, भेड़, मुर्गी तथा अन्य पालतू जानवर संसाधन हैं। 21.

हम यह देख चुके हैं कि जन समाज के विकास के साथ-साथ प्रौद्योगिकी का भी विकास होता है। प्रौद्योगिकी के लाभ से ही जन समाज के जीवन स्तर में सुधार आता है। इसके फलस्वरूप जब मनुष्य को व्यस्त तथा कठिन दिनचर्या से मुक्ति मिलती है और समय मिलता है तब वह नये विचारों की खोज करके उनका प्रयोग करता

है। इससे नई प्रौद्योगिकी का विकास होता है। जब कभी किसी नई प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल होने लगता है तो मनुष्य के रहन-सहन के ढंग में परिवर्तन आ जाता है। इसके साथ उसमें ऐसे नए कार्य करने की क्षमता आ जाती है जो वह पहले नहीं कर सकता था।

प्रत्येक प्रौद्योगिकी की सफलता से किसी क्षेत्र के विकास की दर बढ़ जाती है। इससे ही गांव, शहर, प्रान्त तथा देश आदि बने हैं और उनका विकास हुआ है। किसी नई पद्धति को किस प्रकार स्वीकार किया जाता है? इस की स्वीकृति तथा सुधार इस बात पर निर्भर करता है कि इससे कार्य क्षमता में कितनी आसानी हो जाती है तथा कच्चा माल, ऊर्जा तथा अर्थव्यवस्था में कितनी उन्नति होती है। मनुष्य सदैव विभिन्न प्रकार के पदार्थों की खोज में रहता है जिन्हें वह नए साधनों में परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है। ऐसा करने से नई प्रौद्योगिकी का विकास होता है। यदि हम अपनी सभ्यता के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हमें पता चलता है कि हमने कितने प्रकार के पदार्थों का उपयोग किया है और हम पहले से ही कितने प्रकार की ऊर्जाओं को उपयोग में लाते रहे हैं।

21.2 प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान की अन्योन्याश्रिता

आदि मानव कौन से पदार्थों का प्रयोग करता था। यह स्वाभाविक है कि उनका चयन प्रकृति से उपलब्ध लकड़ी तथा पत्थर तक सीमित रहा होगा। इस युग को "पाषाण युग" कहते हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि यह युग विभिन्न सम्प्रदायों के लिए कब से कब तक रहा क्योंकि प्रत्येक महाद्वीप में मनुष्य ने पत्थरों के औजार बनाना अलग-अलग काल पर आरम्भ किया था।

इसके पश्चात् तांबे की खोज हुई। तांबे को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। तांबे की खानें खुले हुए गड्ढे के समान कम गहरी होती हैं। इसके साथ-साथ निम्न स्तर के जिस ताप को वह उस समय प्राप्त कर सकता था, तांबे को निकालने के लिए पर्याप्त था। तांबे का उपयोग खाना पकाने वाले तथा खाद्य संग्रहण के बर्तनों तथा औजार बनाने के लिये किया जाता था। तब से निरन्तर धातुकर्मी तांबे की अपेक्षा अधिक कठोर धातु मिश्रणों की खोज करते रहे तथा उन्होंने एक मिश्र धातु की खोज की जो तांबे से अधिकतम मजबूत थी। इसके फलस्वरूप ताम्र युग से कांस्य युग का विकास हुआ। तत्पश्चात् एक बहुत कठोर और शक्तिशाली धातु लोहे की खोज हुई। यह स्पष्ट है कि मानव इतिहास में धातुओं का एक बहुत बड़ा महत्व था क्योंकि उस समय युगों का नाम प्रयोग आने वाली वस्तुओं के नाम पर रखे गए हैं। जैसे "पाषाण युग", "ताम्र युग", "कांस्य युग" और "लोह युग"।

आप यह पढ़ चुके हैं कि किसी भार को कुछ दूरी तक विस्थापित करने को कार्य कहते हैं। जब हम किसी वस्तु को काटते अथवा निचोड़ते हैं तब भी कार्य होता है। कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वास्तव में कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। वस्तुओं को गर्म करने के लिए भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः भोजन पकाने के लिए भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकता बढ़ती

है वैसे वैसे ऊर्जा की खपत बढ़ती जाती है। हमें यह ऊर्जा कहां से प्राप्त होती है? प्रारम्भ में ऊर्जा का एकमात्र साधन मनुष्य की पेशीय ऊर्जा थी जिसकी पूर्ति वह भोजन द्वारा करता था। तदनन्तर उसने लकड़ी जलाकर आग उत्पन्न करना सीखा तथा पशुओं जैसे बैल, ऊंट, घोड़ा, हाथी आदि की पेशीय ऊर्जा को उपयोग में लाने के लिए इनको पालतू बनाना आरम्भ किया। यह जानना बहुत आवश्यक है कि ऊर्जा के स्रोत बहुत सीमित हैं।

इसके कुछ महत्वपूर्ण अपवाद भी हैं। मनुष्य ने वायु की ऊर्जा को उपयोग में लाना सीख लिया था। पाल नौकाओं के पाल को फैलाकर उन्हें पवन ऊर्जा से चलाया जाता था। इसका सिद्धान्त बहुत साधारण प्रतीत होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि वायु सदैव उस दिशा में नहीं बहती है जिस दिशा में आपको जाना है। पालों तथा दिक् नियंत्रक (rudder) का कुशल उपयोग पाल नौकाओं को वांछित दिशा में चलाने के लिए बहुत आवश्यक है। बड़ी बड़ी नदियों के बहते पानी का उपयोग लकड़ी के लट्ठों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए किया गया। जल चाकों (water wheel) तथा पवन चक्कियों (wind mills) का भी आविष्कार हुआ तथा उन्हें उपयोग में लाया गया। इस तरह पानी के बहाव तथा वायु के वेग को एक संसाधन अथवा सम्पदा में परिवर्तित किया गया। अतः यह स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी का विकास विज्ञान के नियम तथा सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में उपयोग करने से होता है। यही कारण है कि प्रौद्योगिकी को प्रायः व्यावहारिक विज्ञान कहा जाता है। प्रौद्योगिकी के विकास का स्तर वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर पर आधारित है। विज्ञान की प्रत्येक नई खोज प्रौद्योगिकी के विकास में सहायक होती है। प्राचीन काल में हमारी वैज्ञानिक जानकारी तथा समझबूझ बहुत अधिक नहीं थी। यही कारण है कि कुछ सदियों पहले प्रौद्योगिकी का स्तर बहुत ऊंचा नहीं था। उस समय ऊर्जा के स्रोत भी केवल लकड़ी, वायु तथा पानी थे। कोयले की खोज एक बहुत ही महत्वपूर्ण सम्पदा सिद्ध हुई। यहां तक कि इसे "काला हीरा" कहा जाने लगा था। कोयले को जलाकर उपलब्ध ऊर्जा से इंजनों को चलाया जाता था। रेल के पुराने इंजनों में कोयले को जलाकर पानी से भाप पैदा की जाती थी। भाप के फैलने से पिस्टन तथा पहियों में गति होती थी। इसके पश्चात् पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस की खोज हुई। ईंधन के ये स्रोत कोयले की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक तथा कार्य दक्ष थे। इनकी खोज के पश्चात् मोटर तथा इंजनों की प्रौद्योगिकी तथा यांत्रिक इंजीनियरी का विकास हुआ। नए इंजनों का आविष्कार किया गया जिनमें ये ईंधन उपयोग में लाए जा सकें। विद्युत तथा चुम्बकत्व की खोज से प्रौद्योगिकी में और अधिक उन्नति हुई। इसमें विद्युत इंजीनियरी और इलेक्ट्रॉनिक शिल्प विज्ञान (प्रौद्योगिकी) जैसे नए क्षेत्रों का विकास हुआ। परमाणु ऊर्जा का क्षेत्र हमें एक असीमित संसाधन प्रदान करता है।

मुख्य खोजों तथा आविष्कारों से नई प्रौद्योगिकी का विकास होता है। इनसे पूरे विश्व के समाज के विकास की दर में भी परिवर्तन होता है। जिस समाज ने आग जलानी सीख ली थी उसका विकास उनकी अपेक्षा जल्दी हुआ

जिन्होंने आग जलानी नहीं सीखी थी। खाना बदोशों की अपेक्षा कृषि प्रधान समाज का बहुमुखी विकास होता है। इसी प्रकार धातुओं की खोज तथा उनका उपयोग, बारूद की खोज तथा भाप के इंजन का आविष्कार मनुष्य के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। जिस प्रकार प्रौद्योगिकी का विकास विज्ञान के आविष्कार से हुआ उसी प्रकार प्रौद्योगिकी के उपयोग से कई नई वैज्ञानिक खोजें हुई। इसका एक उदाहरण जेम्स वाट द्वारा आविष्कृत भाप का इंजन है। वाट के इंजन की सफलता के बाद उसके कई साथियों ने ऊष्मा तथा शक्ति के सम्बन्ध में सिद्धान्त दिए। उन्होंने इस प्रकार के प्रश्न पूछे कि "वाट का इंजन पुराने इंजनों की अपेक्षा क्यों अधिक कार्यक्षम है? किसी निश्चित मात्रा के ईंधन से अधिक से अधिक कितनी शक्ति प्राप्त की जा सकती है? शक्ति के संचरण में हानि को किस प्रकार बचाया जा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर से विज्ञान के एक नये क्षेत्र का विकास हुआ जिसे हम **थर्मोडायनमिक्स** (ऊष्मागतिकी) कहते हैं।

दूरदर्शी, प्रौद्योगिकी के विकास का एक दूसरा उदाहरण है। इस उपकरण का आविष्कार डैनमार्क के वैज्ञानिक ने किया था। परन्तु विज्ञान के लिए इसका उपयोग सर्वप्रथम इटली के गैलीलियो नामक वैज्ञानिक ने किया था। उसने दूरदर्शी का उपयोग आकाश को देखने के लिए किया तथा बृहस्पति के उपग्रहों, चन्द्रमा की विशिष्टताओं की खोज की। उसने खगोल विज्ञान की एक शाखा का 1609 में विकास किया।

तीसरा उदाहरण वर्तमान शताब्दी से है। लगभग 50-60 वर्ष पहले अमेरिका के गोडार्ड तथा जर्मनी के बान ब्रान ने द्रव ईंधनों का प्रयोग करके राकेट विकसित किए। द्वितीय महायुद्ध (1939-1944) के समय जर्मनी के प्रयासों से एक ऐसे राकेट का आविष्कार हुआ जिससे हथियारों को कई हजार किलोमीटर की दूरी तक भेजा जा सकता था। इन्हें V-2 राकेट कहते थे और उनसे अन्तरिक्ष युग प्रारम्भ हुआ। उसके पश्चात् राकेट विज्ञान में बहुत उन्नति हुई है। आज ऐसे राकेट उपलब्ध हैं जिनके द्वारा अन्तरिक्ष वाहनों को अन्तरिक्ष में विभिन्न ग्रहों तथा गैलेक्सियों मे भेजा जा सकता है। 1969 में अमेरिका के नील आर्मस्ट्रांग तथा एडविन एल्ड्रिन चन्द्रमा पर पहुंचे तथा अपने साथ वहां की मिट्टी तथा पत्थर लाए। अतः 360 वर्षों (10 पीढ़ियां) में चन्द्रमा का अध्ययन दूरदर्शी की अपेक्षा सूक्ष्मदर्शी में परिवर्तित हो गया।

21.3 शिल्प विज्ञान कितनी तेजी से विकसित होता है और कितनी जल्दी अपनाया जाता है

तालिका 21.1 को देखिए जिसमें ईसवी 1800 तक लगभग 3000 वर्ष में प्रौद्योगिकी का विकास दिखाया गया है। तालिका से यह स्पष्ट है कि सन् 1500-1800 के बीच प्रौद्योगिकी का विकास पहले की अपेक्षा तेजी से हुआ। इसका क्या कारण है? प्राचीन काल में आविष्कार, औजारों का उपयोग या उनका बनना आकस्मिक घटना थी। उस समय प्रयोगाश्रित विधि उपयोग में लाई जाती थी जिसमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों का पूरी तरह स्पष्टीकरण नहीं था। यह संभव है कि वैज्ञानिक सिद्धांतों का स्पष्टीकरण तब हुआ जब यह जानने की कोशिश की गई कि किसी विधि या आविष्कार ने ऐसा रूप क्यों धारण किया।

तालिका 21.1

1000 ईसापूर्व तथा सन् 1800 ई. के बीच प्रौद्योगिकी का विकास

काल	*प्रौद्योगिकी*	*उपयोग करने वाला वर्ग/देश*
600 ईसा पूर्व	पत्थर की चक्की से अनाज पीसना	–
350 ईसा पूर्व	कपास को कातकर धागे बनाना	भारतीय तथा ग्रीक–कपड़े के लिए
300 ईसा पूर्व	लकड़ी के बने गियर, घिरनी तथा पेंच	ग्रीक, रोमन–पानी खींचने तथा भारी वस्तुओं को उठाने के लिए
100 ईसा पूर्व	फलों का रस निकालने के लिए पेंच वाली मशीन, लोहे के पहियों का रथ	ग्रीक और सेल्ट–युद्ध के लिए
ई. सन् 300 से 500	कीमिया, कांच, जलचक्की और सिल्क पदचालित मशीनें कागज खगोल शास्त्र	अरबों, यूरोपियों, चीनियों द्वारा ग्रीक, मिस्र में, भार उठाने के लिए चीन में ग्रीक, भारतीय (टोलेमी, सूर्य–सिद्धांत)
ई. सन् 500 से 1000	नावें, चुम्बकीय दिक् सूचक पवनचक्की गणित सड़कों के नक्शे तथा सड़क निर्माण खगोलीय परिकलन	वाइकिंग, चीनी चीन, पर्सिया भारत (महावीर) रोम भारत (आर्यभट्ट से भास्कर तक)
ई. सन् 1000 से 1250	कांच बनाने की फैक्ट्रियां धातु विज्ञान मार्बल की टाइप से छपाई	इटली यूरोप चीन
ई. सन् 1250 से 1500	हाथ करघा तथा मशीन की खड्डी कीमिया	चीन भारत

	यांत्रिक घड़ियां	यूरोप
	छापे खाने	जर्मनी
	तोपें तथा हथियार	चीन
ई. सन् 1500 से 1750	ज्यामिती की सहायता से भूमि सर्वेक्षण	यूरोप
	खनिज विज्ञान	जर्मनी (एग्रिकोला)
	सूक्ष्म जीव विज्ञान (कीटाणुओं की खोज)	पश्चिमी यूरोप
	गतिविज्ञान, चुम्बकीय, विद्युत विश्लेषिक ज्यामिती	यूरोप
	सूक्ष्मदर्शी तथा उसका उपयोग	हालैंड
	आगनात्मक तर्क	फ्रांस (दकार्ते)
	दूरदर्शीय तथा खगोल विज्ञान	हॉलैंड तथा इटली
	गुरूत्वाकर्षण सिद्धांत, कैलकुलस	इंग्लैंड (न्यूटन)
	भाप का इंजन	इंग्लैंड
	रसायन विज्ञान	इंग्लैंड (बॉयल)
	थर्मामीटर, इलेक्ट्रोस्टैटिक मशीन	यूरोप
ई. सन् 1750 से 1800	कपड़ा बुनने की मशीन, लाइट हाउस, पानी के ऊपर लोहे के पुल, निर्वात पम्प, विद्युत के लिए वोल्टा सेल, वाट का भाप का इंजन, सड़क पर चलने वाली भाप की गाड़ियाँ।	इंग्लैंड, यूरोप

इन प्रयोगात्मक प्रयत्नों से विज्ञान की नींव पक्की होती गई। विज्ञान की विधियों के विकास के लिए एलहाजन (11वीं शताब्दी), रोज़र बेकन (13वीं शताब्दी), फ्रांसिस, बेकन, कोपरनिकस, गैलीलियो (16वीं तथा 17वीं शताब्दी) इन सभी को श्रेय जाता है। उन्होंने अवलोकन तथा सिद्धान्तों के प्रयोगात्मक सत्यापन पर बल दिया। विज्ञान की विधि पर आधारित कई नियमों का स्पष्टीकरण हुआ और पूर्वानुमान लगाना संभव हो सका। अब विधि का उपयोग अथवा औजारों का विकास तर्क संगत तथा क्रमबद्ध रूप से होने लगा। अब प्रौद्योगिकी का विकास केवल प्रयागाश्रित प्रयत्न न रहकर विज्ञान के विनियोग से विकसित किया जा सकता है।

जैसे जैसे विज्ञान का विकास और अधिक

प्रसार हुआ वैसे वैसे उसके उपयोगों की संख्या तथा दर भी बढ़ती गई। 19वीं शताब्दी तक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अन्योन्याश्रिता स्थापित हो चुकी थी। इससे तकनीकी आविष्कारों में क्रान्तिकारी विकास हुआ। जैसे ही विज्ञान के किसी सिद्धान्त की खोज हुई वैसे ही आविष्कारकों ने यह प्रश्न पूछा कि इसका क्या उपयोग है? किसी प्रौद्योगिकी अर्थात् शिल्पविज्ञान के विकास में कई वैज्ञानिक सिद्धान्त एक साथ उपयोग में लाए जा सकते हैं। इससे कई नए तथा जटिल अनुप्रयोग सम्भव हुए। तालिका 21.2 में इसके कई उदाहरण दिए गए हैं। खान में उपयोग में आने वाले डेवी के सुरक्षा लैम्प की खोज में कई सिद्धान्त जैसे ऊष्मा संचरण, प्रकाश संचरण, सुरक्षा विधियों, धुएं का निष्कासन आदि से संबद्ध सिद्धान्तों का उपयोग हुआ। विद्युत जनित्र तथा विद्युत बल्ब के विकास में यांत्रिक इंजीनियरी, ऊष्मा संचरण आदि कई सिद्धान्तों का उपयोग किया गया।

ऊर्जा के नए स्रोतों की उपलब्धि के पश्चात् अमेरिका तथा यूरोप में कई नए उद्योग धन्धे आरम्भ हुए। इनमें स्टील, रेलें, कपड़ा, परिवहन तथा विद्युत की वस्तुएं प्रमुख हैं। उद्योग से क्या होता है? आइए इसे समझने के लिए एक कपड़ा उद्योग पर विचार करें। कपड़ा धागों द्वारा बनता है। धागे करघे में तैयार किए जाते हैं। हाथ से चलने वाले करघे में कारीगर (अपनी पेशीय ऊर्जा से) दिनभर में केवल कुछ ही मीटर कपड़ा तैयार कर सकता है परन्तु विद्युत शक्ति का इस्तेमाल करके ऐसी मिलें बनाई जा सकती हैं जिनमें प्रतिदिन कई हजार मीटर कपड़ा तैयार किया जा सकता है। किसी फैक्ट्री अथवा उद्योग में वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। वस्तुओं के अधिक उत्पादन का लाभ यह है कि हमें उसी प्रकार की वस्तु सस्ते दामों पर उपलब्ध हो जाती है। यूरोप में 18वीं तथा 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति से यही हुआ। यह क्रांति किस प्रकार संभव हुई? इसके कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं:— मशीनों को चलाने के लिए ऊर्जा के नए स्रोत, विज्ञान के कई मूल सिद्धान्तों की उत्पत्ति, पदार्थों के उत्पादन में विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रयोग तथा वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन जिससे गुणवत्ता अच्छी रहे तथा कीमतों में कमी आए।

उद्योग द्वारा वस्तुएं अधिक मात्रा में तथा कम कीमत पर उपलब्ध कराई जा सकती हैं। इसमें कच्चे माल की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है। किसी परिवार द्वारा हथकरघे में प्रतिदिन केवल कुछ किलोग्राम धागा ही इस्तेमाल होता है। परन्तु किसी फैक्ट्री में प्रतिदिन कई टन धागे की आवश्यकता होती है। अतः उद्योग में कच्चे माल की आवश्यकता बहुत अधिक पड़ती है। यूरोप में सारे कच्चे माल का उत्पादन नहीं होता था। इसलिए यूरोपीय देशों का ध्यान एशिया तथा अफ्रीका के देशों की ओर गया जहां कच्चा माल बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध था। परिणामस्वरूप उन्होंने इन देशों पर अधिकार कर लिया। भारत के नक्शे में उन क्षेत्रों

को देखिए जहां कपास, पटसन, तथा टीक की लकड़ी का उत्पादन होता है। "ईस्ट इण्डिया कंपनी" ने इन क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। यह कंपनी भारतवर्ष से कच्चे माल को बहुत सस्ते दामों पर खरीदकर इंग्लैंड भेज देती थी। कच्चे माल से उत्पादित वस्तुओं को भारतवर्ष में ही अधिक दाम पर बेचा जाता था। इस प्रकार भारत से इंग्लैंड को दो प्रकार से लाभ हुआ – (1) कच्चे माल का स्रोत (2) उत्पादित वस्तुएं जैसे– कपड़ा, साबुन इत्यादि के लिए मंडी या बाजार।

कच्चे माल को बेचने से बहुत अधिक धन प्राप्त नहीं होता है। जब कच्चे माल से कुछ नई वस्तुएं बना दी जाती हैं तो उन्हें बेचकर अधिक धन प्राप्त किया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए गेहूं लगभग 3 रुपये प्रतिकिलो बेचा जाता है परंतु जब उससे ब्रेड बनाकर बेची जाए तो दोगुनी कीमत मिलती है। लोह अयस्क बहुत सस्ते दाम पर मिलता है लेकिन उसी से बना स्टील बहुत मंहगा होता है। भारत में लोहा तथा मैंग्नीज अयस्क अधिक मात्रा में उपलब्ध है। क्या हमें इन अयस्कों को बेचना चाहिए? या हमें इनसे केवल वस्तुएं बना कर बेचनी चाहिए?

तालिका 21.2

प्रौद्योगिक तथा औद्योगिक क्रांति (1800 से 1900)

काल	*प्रौद्योगिकी*	*प्रयोग*
1800 से 1805	भाप से चलने वाली नाव	युद्ध तथा संचार
	भाप से चलने वाली रेलें तथा इंजन	परिवहन
1815	पत्थर तथा गटर की सहायता से मैक ऐडम सड़कों का निर्माण	सड़क, परिवहन
1825	डेवी का तार की जाली से बना लैम्प	खदानों में सुरक्षित लैम्प
	डिब्बों में सुरक्षित मांस	भोजन का संरक्षण
	थेम्स नदी के नीचे सुरंग	परिवहन
1830 से 1850	लोहा (पीटवा)	इंजीनियरिंग भवन निर्माण
	जल टरबाइन	इंजीनियरिंग
	बल्कनित रबड़	परिवहन

	टेलीग्राफ का आविष्कार	संचार
	फोटोग्राफी	संचार
	पोर्टलैंड सीमेंट	उच्च कोटि की भवन निर्माण सामग्री
1850 से 1880	संश्लेषित रंग	वस्त्र
	कृत्रिम सिल्क (रेयन)	वस्त्र
	स्टील का उत्पादन	उद्योग, भवन, इंजीनियरिंग
	तेल की खोज (पेट्रोलियम)	ईंधन, युद्ध
	विद्युत जनित्र	इंजीनियरिंग
	विद्युत बल्ब	इंजीनियरिंग, ऊर्जा
	भाप की टरबाइन	इंजीनियरिंग, परिवहन
	डाइनामाइट	सुरक्षित विस्फोटक, युद्ध
	टंकण मशीन (Typewriter)	संचार
1880 से 1900	खेती बाड़ी में अधिक उत्पादन	भोजन की आवश्यकता
	बहुमंजिली इमारतें	आसान निर्माण
	डीजल इंजन	इंजीनियरिंग, परिवहन
	पेट्रोल, इंजन	इंजीनियरिंग, परिवहन
	सिनेमा प्रक्षेपित्र	संचार

औद्योगिक क्रांति से एक नया युग प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक क्षेत्र में कई आविष्कार हुए। भाप के इंजन से रेलों तथा बड़े जहाजों का विकास हुआ जिनमें वायु तथा पालों की आवश्यकता नहीं होती थी। जब पेट्रोल उपलब्ध हुआ तो ऐसे हल्के इंजन बनाए गए जो बहुत शक्तिशाली थे। इन इंजनों का प्रयोग राइटब्रदर्स ने 1903 में हवाई जहाज को उड़ाने के लिए किया। आजकल बड़े वायुयानों का उपयोग बहुत सामान्य हो गया है।

आजकल कई नए पदार्थ जैसे स्टेनलैसस्टील, प्लास्टिक, नॉईलान तथा अन्य धातुओं के मिश्रण बनाए जा चुके हैं। ऐसी कई नई औषधियों की खोज की जा चुकी है जिनसे मृत्यु दर बहुत कम हो गई है। पहले बहुत से मनुष्य मलेरिया, चेचक, इन्फ्लूएंजा तथा टी.बी आदि जैसी बीमारियों से मर जाते थे। आजकल इन बीमारियों का इलाज हो जाता है।

संचार एक और ऐसा क्षेत्र है जिसमें प्रौद्योगिकी के कारण बहुत विकास हुआ है। मुद्रणयंत्र (Printing Press) का आविष्कार 1448 में जर्मनी में हुआ। आजकल पुस्तकें बहुत अधिक संख्या में छपती हैं तथा वे काफी कम कीमतों में उपलब्ध हैं। मुद्रण यंत्र के आविष्कार से पहले पुस्तक की प्रत्येक प्रति हाथ से लिखी जाती थी। टेलीग्राम, रेडियो तथा अब टेलीविजन से हमें समाचार बहुत जल्दी प्राप्त हो जाते हैं। इन आविष्कारों से पहले समाचार तथा पत्र मनुष्यों द्वारा ले जाए जाते थे। इसलिए समाचार केवल उतनी तेजी से ही पहुंच सकता था जितनी तेजी से

वाहक चल सकता था। अब समाचार रेडियो तरंगों द्वारा प्रसारित होते हैं। रेडियो की तरंगें प्रकाश की चाल से चलती हैं। वे एक सेकंड में पृथ्वी के सात चक्कर लगा सकती हैं।

तालिका 21.3

1900 से अब तक 80 वर्षों का प्रौद्योगिक विकास

द्वितीय औद्योगिक क्रांति

1900 से 1910	प्लास्टिक का निर्माण (बैकलैंड द्वारा बैकेलाइट 1906) बीमारियों का रसायनों द्वारा उपचार (कैमोथेरेपी, अहृर्लिच 1907) कारों का विशाल उत्पादन (एसेम्बली लाइन विधि, T मॉडल की कारें, फोर्ड 1908) इंजन द्वारा चलाए जाने वाले हवाई जहाज (राइट बंधु 1903)
1910 से 1920	रेडियो तथा बेतार संचार के लिए निर्वात ट्यूब या वाल्व (फ्लेमिंग 1904, 1912) पटरी पर चलने वाले वाहनों का विशाल उत्पादन, बड़ी नहरों का निर्माण (50 मील लम्बी पनामा नहर 1914)
1920 से 1930	रेडियो प्रसारण नेटवर्क (1922) द्रव ईंधन का उपयोग करके पहले राकेट का निर्माण (गोडार्ड 1926) संसार की सबसे ऊंची इमारत (न्यूयार्क की एम्पायर स्टेट बिल्डिंग, 102 मंजिलें, 1930)
1930 से 1940	टेलीविज़न का आविष्कार (बेयर्ड 1936) गैस टरबाइन इंजन (व्हिटल तथा चेन 1937) बांध बनाकर जल विद्युत शक्ति का उत्पादन (बोल्डर बांध द्वारा दस लाख किलोवाट विद्युत का उत्पादन 1936) संश्लेषित कपड़ा, नायलॉन का निर्माण (कैरोथर्स—1939) डी.डी.टी. कीटनाशक का निर्माण (मुलर—1940)
1940 से 1950	प्रतिजैविक दवाइयां (पेनिसिलिन, फ्लेमिंग और फ्लोरे, 1942) प्रथम परमाणु शृंखला अभिक्रिया (फर्मी इत्यादि 1942) प्रथम परमाणु बम (अमेरिका 1945) ध्वनि की गति से तेज चलने वाला हवाई जहाज (1947) ट्रांजिस्टरों का आविष्कार (1948) प्रथम इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर (1946)
1950 से अब तक	परमाणु शक्ति संयंत्र (1952)

अंतरिक्ष की खोज (स्पुतनिक, रूस, 1957)
उपग्रह द्वारा दूर संचार (1970 का दशक)
जैव प्रौद्योगिकी (1975)
व्यक्तिगत कम्प्यूटर (1980 का दशक)

आप देख सकते हैं कि प्रौद्योगिकी का विकास किस प्रकार हुआ। तालिका 21.3 में इस शताब्दी के महत्वपूर्ण विकास (द्वितीय औद्योगिक क्रांति) दिए गए हैं। पिछले 50 वर्षों में यह विकास बहुत तेजी से हुआ है। 1950 में रेडियो का आकार बहुत बड़ा होता था। उनमें निर्वात नलिकाएं होती थी तथा घरेलू विद्युत लाइन आवश्यक थी। रेडियो बहुत ही कम लोगों के पास थे। बड़े गांवों व छोटे कस्बों में कुछ गिने-चुने रेडियो थे। जब ट्रांजिस्टर का विकास हुआ तो पाकेट रेडियो बहुत अधिक संख्या में बनने लगे। आजकल छोटे से गांव में भी बहुत से रेडियो उपलब्ध हैं तथा उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाया जा सकता है।

आप यह भी देखेंगे कि आजकल नई प्रौद्योगिकी को अपनाने में और व्यापक पैमाने में प्रयोग करने में बहुत अधिक समय नहीं लगता है। प्राचीन काल में नई प्रौद्योगिकी का व्यापक पैमाने पर उपयोग होने में बहुत समय लगता था। उदाहरणार्थ, माचिस का आविष्कार 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। लेकिन इसका व्यापक उपयोग होने में लगभग 70 वर्ष लगे। जबकि सर हम्परी डेवी द्वारा आविष्कृत सुरक्षा लैम्प यूरोप की खानों में केवल 10 वर्षों में व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने लगा था। आजकल किसी प्रौद्योगिकी के विकास तथा उसके अपनाने में बहुत कम समय लगता है।

प्रौद्योगिकी को अपनाने में कम समय लगने का क्या कारण है? सर्वप्रथम बात यह है कि किसी प्रौद्योगिकी का विकास आवश्यकता पड़ने पर ही किया जाता है। उदाहरणार्थ, जैव प्रौद्योगिकी द्वारा रक्त तथा अन्य सैम्पलों के विश्लेषणों की सही विधि विकसित हो गई है। इससे कई बीमारियों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इनमें से कई तो सरलता से इस्तेमाल करने के लिए किट के रूप में उपलब्ध हैं। रक्त के विश्लेषण की आवश्यकता बहुत बार होती है और इन किटों द्वारा यह विश्लेषण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी से मनुष्य की कार्यक्षमता और आर्थिक लाभ होना चाहिए। प्लास्टिक इसका एक उदाहरण है। प्रौद्योगिकी से हमें खाना बनाने तथा संग्रहण के लिए प्लास्टिक के बर्तन उपलब्ध हैं। इनका रख रखाव आसानी से किया जा सकता है। ये बर्तन सस्ते मिलते हैं तथा आसानी से टूटते या नष्ट नहीं होते हैं। ये भार में हल्के होते हैं तथा धातुओं की अपेक्षा ऊष्मा के कुचालक होते हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि ये टिकाऊ हैं और सस्ते भी हैं। यही कारण है कि इनका प्रयोग गाँव में भी किया जाने लगा है। तीसरे प्रौद्योगिकी की जानकारी आसानी से, शीघ्र तथा विस्तारपूर्वक उपलब्ध होनी चाहिए। आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व भी किसी जानकारी को पृथ्वी के विभिन्न भागों में पहुंचने तथा समझने में बहुत समय लगता था। परंतु संचार तथा यातायात की व्यापक सुविधाओं से अब संसार भर में समाचार कुछ ही सेकंड में पहुँच जाते हैं। प्राचीन काल की अपेक्षा अब

प्रौद्योगिकी को अधिक तेजी से अपनाया जा सकता है। प्रौद्योगिकी को जल्दी अपनाने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं – (1) आवश्यकता की पूर्ति (2) इस्तेमाल करने में आसानी तथा कार्य क्षमता (3) विधि से आर्थिक लाभ (4) प्रौद्योगिकी के बारे में तेजी से जानकारी।

इन्हीं कारणों से कोई प्रौद्योगिकी दूसरी प्रौद्योगिकी का स्थान ले लेती है। जब रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन अधिक मात्रा में होने लगा तो उन्होंने खेतों में खाद का स्थान ले लिया। जब वाहनों का आविष्कार हुआ तो उन्होंने बैल गाड़ियों का स्थान ले लिया। अब सड़क के वाहनों तथा पानी के जहाज की अपेक्षा हवाई जहाज अधिक प्रचलित हो गए हैं। 40 वर्ष पहले रेडियो निर्वात नलिकाओं से बनाए जाते थे तथा उनका आकार बड़ा होता था। ट्रांजिस्टर तथा एकीकृत परिपथों के आविष्कार के बाद हम जो रेडियो खरीदते हैं, वे बहुत सस्ते, भार में हल्के, बहुमुखी तथा ऐसे होते जिनमें पुर्जों को बदलने की आवश्यकता बहुत कम होती है।

21.4 नई प्रौद्योगिकी, नई आवश्यकताएं

लगभग 100 वर्ष पूर्व तक अरब का प्रायद्वीप गरीब था तथा आर्थिक रूप से विकसित नहीं था। वहाँ पेट्रोलियम की खोज के पश्चात् तेल की प्रौद्योगिकी विकसित हुई और उस प्रायद्वीप में क्रांति हुई। आज साउदी अरब, कुवैत तथा यू.ए.ई. (U.A.E) संसार के सबसे अधिक अमीर देश हैं। लोगों की आवश्यकताएं तथा रहन सहन के ढंग बदल गए हैं। तेल की प्रौद्योगिकी की कई आवश्यकताएं हैं। कच्चे तेल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बहुत लंबी पाइप लाइन की आवश्यकता होती है। तेल शोधक कारखानों में विद्युत शक्ति तथा अन्य सुविधाओं की आवश्यकता होती है। सड़कें, हवाई अड्डे तथा बन्दरगाह आधुनिक तथा कार्य कुशल होने चाहिए। संसार के अन्य देशों से संचार सम्प्रेषण के अच्छे साधन होने चाहिए। इन देशों में अन्य देशों तथा सभ्यताओं के लोग कार्य करने तथा धन कमाने के लिए आए हुए हैं। इन सब चीजों के होने के कारण यहाँ के निवासियों के रहन-सहन का ढंग, समाज तथा उनकी परम्पराओं में बदलाव आया है। फलस्वरूप हर आदमी की आवश्यकताओं तथा अभिरूचियों में बदलाव आया है। उदाहरणार्थ, वे सब अपार्टमेंट्स तथा फ्लैट्स में रहते हैं, स्कूटरों तथा गाड़ियों का इस्तेमाल करते हैं। रसोईघर में खाना पकाने की गैस उपयोग में लाते हैं और संश्लिष्ट (synthetic) कपड़े पहनते हैं। घर की आवश्यकताओं की वस्तुएं प्रतिदिन न खरीदकर सप्ताह में एक बार खरीदी जाती हैं। सब्जियों तथा मांस को लम्बे समय तक ताजा रखने के लिए रेफ्रीजरेटर का उपयोग किया जाता है। घरों में आराम से रहने तथा गर्मी सर्दी से बचने के लिए कूलर, वातानुकूलक तथा हीटर उपयोग में लाए जाते हैं। मनोरंजन के लिए रेडियो तथा टेलीविजन बहुत लोकप्रिय हो गए हैं।

इस प्रकार के परिवर्तन तथा नई आवश्यकताएं भारत के गांवों में भी देखी जा सकती है। भवन-निर्माण की नई सामग्रियों की उपलब्धि के पश्चात् अब गांवों के बहुत से घर सीमेंट तथा लोहे के बने हुए पाए जाते हैं। इसी प्रकार अब रसोई घर में कोयले तथा लकड़ी के चूल्हों के स्थान पर मिट्टी के तेल के स्टोव तथा खाना पकाने की गैस अधिक प्रचलित हो गई है।

गांव के लोगों की आवश्यकताएं तथा रुचियां बदल गई हैं। वे नई प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप मिलने वाले आराम, सुविधा और मूल्यों से प्रभावित हो चुके हैं। अब प्रौद्योगिकी का प्रभाव प्रत्येक मनुष्य पर पड़ रहा है। किसी एक प्रौद्योगिकी के उपयोग से दूसरी प्रौद्योगिकी के उपयोग की आवश्यकता महसूस होने लगती है। इसका प्रभाव हम गांव के जीवन पर भी देख सकते हैं। उत्तम बीजों के उपयोग से फसलें अच्छी होने लगी हैं। इस कारण यह आवश्यक हो गया है कि अनाज के संग्रहण तथा बचाव के लिए नई प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाए। अनाज को रेल, ट्रक, पानी के जहाजों द्वारा दूर-दूर तक पहुंचाया जाए। इसके लिए गांवों में अच्छी सड़कें, अधिक विद्युत, सिंचाई के अच्छे साधन और सहायक उद्योगों की आवश्यकता होगी।

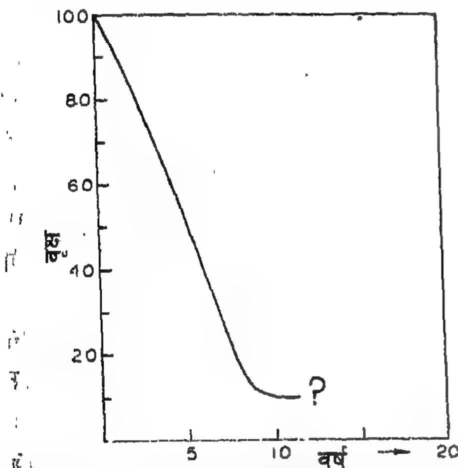
21.5 सिक्के के दो पहलू

हम पहले यह देख चुके हैं कि पिछले कुछ वर्षों में प्रौद्योगिकी का विकास बहुत तेजी से हुआ है। परन्तु प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रभाव की समझ बहुत धीरे-धीरे आ रही है। अब एक और बात जो हमने महसूस की है वह यह है कि प्रौद्योगिकी के कारण कच्चे माल की खपत बहुत तेजी से होती है। इसका प्रभाव यह है कि हमारे कच्चे माल के स्रोत बहुत तेजी से समाप्त हो रहे हैं। आइए इसे समझने के लिए दो उदाहरणों पर विचार करें।

कपास, कपास के पौधे से प्राप्त होती है जिसे प्रत्येक वर्ष उगाया जाता है। यदि कपड़े की मिलें वर्ष भर के रूई के उत्पादन को छह महीने में ही समाप्त कर दें तो क्या होगा? शेष छह महीने कपड़ा मिलें बंद होंगी। चूंकि हमें फैक्ट्री तथा उसमें कार्य करने वाले कर्मचारियों का भरण-पोषण पूरे वर्ष करना होगा। इसलिए कपड़ा कुछ महंगा हो जाएगा। यदि दोगुने क्षेत्र में कपास उगाने का निर्णय करें तो क्या होगा? सभी तरह की भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती। हमारे इस निर्णय का प्रभाव यह होगा कि वह भूमि जिस पर हम गेहूं तथा ज्वार जैसी फसलें उगाते हैं, कपास उगाने के काम में आएगी। इससे कपड़ा मिलें तो पूरे वर्ष कार्य कर सकेंगी परन्तु इसके साथ साथ खाने की कमी हो जाएगी। यह निर्णय हमें लेना है कि क्या हम भूखे रहें और अच्छे कपड़े पहनें। इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर आसान या साधारण नहीं हैं। एक एकड़ जमीन पर कपास उगाना, गेहूं उगाने की उपेक्षा अधिक लाभकारी होगा (क्योंकि कपास गेहूं से महंगा है)। जो किसान इन समस्याओं पर विचार नहीं करते हैं उन्हें भोजन से ज्यादा कपास उगाने का प्रलोभन रहता है। यही कारण है कि यहां राष्ट्रीय प्राथमिकता की योजनाओं की आवश्यकता होती है।

किसी एक वन का उदाहरण लीजिए। वन अमूल्य सम्पत्ति है। इनसे भवन तथा फर्नीचर के लिए कीमती लकड़ी प्राप्त होती है, जलाने के लिए लकड़ी प्राप्त होती है तथा कई अन्य चीजें जैसे लाख तथा रेज़िन प्राप्त होते हैं। शक्तिशाली मशीनों की उपलब्धि से पहले मनुष्य दिन में अधिक से अधिक एक या दो वृक्ष काट सकता था। अब वह मशीनों की सहायता से एक दिन में सैकड़ों वृक्ष काट सकता है। क्या हमें इस प्रकार वृक्ष काटने चाहिए? आइए इसके एक साधारण पहलू पर विचार करें। मान लीजिए किसी एक वन में सौ वृक्ष हैं। हम प्रति वर्ष दस वृक्ष काटते हैं

और दस वृक्ष लगा देते हैं। मान लो एक वृक्ष को बढ़ने में दस वर्ष लगते हैं। चित्र 21.1में किसी वन में एक वर्ष में पूरी तरह से बढ़े हुए वृक्षों का ग्राफ दिखाया गया है। ग्राफ में प्रत्येक वर्ष में वृक्षों की संख्या दिखाई गई है। वृक्षों को काटने तथा पुनः लगाने का परिणाम क्या होता है ये भी दिखाया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि 10 वर्ष के बाद वन में केवल 10 वृक्ष होंगे। यह तो तब हुआ है जबकि हमने उतने ही पेड़ और लगा दिये थे जितने कि हमने काटे थे। तब ऐसा क्यों हुआ? हम यह भूल गए कि वृक्ष को बढ़ने में 10 वर्ष लगते हैं। जितने वृक्ष हमने काटे थे, हमें उससे अधिक वृक्ष लगाने चाहिए थे।



चित्र 21.1 ऐसे वनों का अध्ययन जिनमें वृक्ष काटे जाते हैं और फिर से लगाये जाते हैं।

वन जैसी राष्ट्रीय सम्पत्तियों के विकास में समय लगता है। हजारों वर्ष पूर्व पृथ्वी के अंदर वृक्षों के दबने से कोयला बना था। इसका अर्थ यह हुआ कि कोयला तथा खनिज तेल (पेट्रोल) जिन्हें अब हम इस्तेमाल कर रहे हैं उनके बनने में लाखों वर्ष लगे हैं। इसका अर्थ यह भी हुआ कि फिर से कोयला बनाने में प्रकृति लाखों वर्ष लेगी। यदि हम इस सम्पत्ति को कुछ ही शताब्दियों में समाप्त कर दें तो क्या होगा?

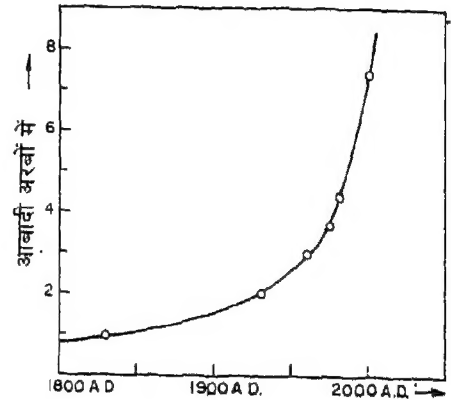
केक को आप बचा भी सकते हैं और खा भी सकते हैं

प्रौद्योगिकी किसी असंसाधन को संसाधन में बदल सकती है। ऐसी बहुत सी विधियाँ हैं जिनके द्वारा वातावरण का संतुलन बनाए रखकर अपशिष्ट पदार्थों को सम्पत्ति में बदला जा सकता है। उदाहरणार्थ पशुओं का मल बहुत निम्न स्तर का संसाधन है। गोबर को उपले बनाकर ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है अथवा गड्ढे में दबाकर खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। गोबर गैस संयंत्र द्वारा गोबर को ऐसी गैस में परिवर्तित किया जा सकता है जो खाना पकाने तथा प्रकाश के लिए काम आ सकती है। यह गैस एक बहुत अच्छी किस्म का ईंधन है। जलने पर इसकी लौ नीली होती है तथा इसका ताप भी बहुत अधिक होता है। गैस प्राप्त होने के पश्चात् संयंत्र में बचे अवशेष से उत्कृष्ट खाद प्राप्त होती है। गोबर गैस संयंत्र उच्च कोटि के शिल्प विज्ञान (प्रौद्योगिकी), का एक उदाहरण है। यह अपशिष्टों को पुनः सम्पत्ति में बदल देता है तथा वातावरण को भी प्रदूषित नहीं करता।

इस सिद्धान्त से हमें एक बहुत ही सरल शिक्षा मिलती है। किसी सिक्के के दोनों पहलुओं को देखना चाहिए। यह निश्चित ही है कि प्रौद्योगिकी किसी असंसाधन को संसाधन में

परिवर्तित कर देती हैं। परन्तु हमें यह भी देखना चाहिए कि क्या वह किसी संसाधन को व्यर्थ की वस्तु में तो नहीं बदल रही है? हर जगह कपास उगाने से हमारे खाद्य उत्पादन में कमी हो जाएगी। पानी तथा उर्वरकों के अंधाधुंध इस्तेमाल करने से हमें कुछ वर्षों तक भरी-पूरी फसल प्राप्त हो सकती है, परन्तु आने वाले कुछ वर्षों में भूमि में लवण की अधिकता होने के कारण वह खेती के लिए बेकार हो जाती है। इसके साथ-साथ यदि सम्पदा को प्राप्ति की दर की अपेक्षा अधिक दर पर व्यय किया जाए तो भी वह बहुत हानिकारक होगा। हमें ऐसे संसाधनों को तो और भी ध्यान से उपयोग में लाना होगा जो फिर प्राप्त नहीं किये जा सकते। ऐसी सम्पदाओं को अनवीनीकृत (Non-reneweble) संसाधन कहते हैं।

पिछले दो सौ वर्षों में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का बहुत विकास हुआ है। प्रौद्यौगिकी को प्रयोग में लाने के लिए उसे सीखने में समय लगता है। आइए इसके एक उदाहरण पर विचार करें। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अर्थात् 1945 के पश्चात् बहुत सी नई औषधियों का आविष्कार हुआ। अब प्लेग, निमोनिया, टी.बी., चेचक, मलेरिया आदि बीमारियों का भी इलाज किया जा सकता है। पहले की अपेक्षा अब ऑपरेशन अधिक सुरक्षित हो गया है। अब प्रतिजैविक (एन्टिबायोटिक) दवाइयों की सहायता से संक्रामक रोगों का उपचार किया जा सकता है। बच्चे का जन्म अब निश्चित तौर पर सुरक्षित है। इसका अर्थ यह हुआ कि अब मृत्यु दर कम हो गई है। इन औषधियों के आविष्कार से पहले संसार की जनसंख्या लगभग स्थिर थी तथा मृत्यु दर और जन्म दर बराबर थे। अब मृत्यु दर कम हो गयी है। अब यदि जन्म दर पहले जितनी रहेगी तो जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ जाएगी। चित्र 21.2 में यह दिखाया गया है कि संसार की जनसंख्या वर्ष 1830 से किस प्रकार बढ़ी है। उस समय यह 1 अरब थी जो अगले सौ वर्षों में दोगुनी हो गयी तथा वर्ष 2 हजार तक यह 8 अरब हो जाएगी।



चित्र 21.2 *इस शताब्दी में संसार की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि।*

आइए एक वृत्ताकार झील का उदाहरण लें। इसमें कुछ पौधे तथा मछली जैसे कुछ जन्तु हैं। उस झील में पौधे तथा जन्तु तब तक हंसी खुशी से रह रहे थे जब तक कि उनके मध्य में एक नया पौधा नहीं उगा था। इस पौधे में कुछ विशेष गुण थे। इसकी वृद्धि इतनी तीव्र थी कि प्रतिदिन इसकी संख्या दोगुनी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त यह जिस क्षेत्र में उगा हुआ था उसमें ये किसी भी और प्रकार के जीव को पनाह नहीं देता था। आप इसे कब देखेंगे। शायद तब जब कि वह काफी बड़ा हो गया होगा। मान लो आपने इसे तब देखा जब

कि एक चौथाई झील इससे भर गई थी। यह निश्चित ही है कि दो दिन के बाद इससे पूरी झील ढक जाएगी और यह बाकी सभी सजीव वस्तुओं को मार देगा। इसके लिए हमें क्या करना चाहिए। मान लो हमें ऐसी प्रौद्योगिकी उपलब्ध है जिसके द्वारा हम झील के क्षेत्रफल को 10 गुना बढ़ा दें (यह कोरी कल्पना ही है। वास्तविकता यह है कि हम झील के क्षेत्रफल को 10 गुना तो क्या 10 प्रतिशत भी नहीं बढ़ा सकते।) अगर हम ऐसा कर भी पाएं तो उसके बाद भी हमारी समस्या का समाधान नहीं होगा। आप यह देख सकते हैं कि इस बढ़ी हुई झील को भी यह नाशक पौधा केवल तीन दिन में ही भर देगा। यदि हम इस झील को 1 घंटे में 10 गुना बड़ा कर दें फिर भी हम झील के सजीवों को नहीं बचा पायेंगे।

जब कोई वस्तु इस गति से बढ़ती है कि किसी निश्चित समय (मान लो एक दिन या एक वर्ष) में वह दोगुनी हो जाए तो ऐसी बढ़ोतरी को चरघातांकी वृद्धि (exponential growth) कहते हैं। यदि आप इस प्रकार के संबंध को किसी ग्राफ पेपर पर प्रदर्शित करें तो आप यह देखेंगे कि वृद्धि की गति कितनी तेज है।

$y=2^x$ का ग्राफ खींचो। x - के मान 1, 2, 3, 4 लीजिए और y के प्राप्त मानों को ध्यान से देखिए।

अब आप समझ सकते हैं कि प्रदूषण इतनी बड़ी समस्या क्यों है? जब उद्योगों के अपशिष्टों को वातावरण में छोड़ दिया जाता है तब उसके दो प्रभाव होते हैं। इन प्रभावों को समझने के लिए आइए कुछ उदाहरण लें।

1. कोई भी उद्योग प्रदूषित पानी को (जिसमें विषैले पदार्थ हों) नदियों में बहा देते हैं।

   नदी में पौधे तथा जीव मर जाते हैं तथा वे पौधे जो प्राकृतिक स्वच्छता बनाए रखते हैं नष्ट हो जाते हैं। इससे पानी पीने योग्य नहीं रहता है।

2. उद्योगों से निकले हुए हानिकारक धुएं को वायु में छोड़ दिया जाता है।

   यह वायु श्वसन लेने के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। धुआं पौधों में इकट्ठा हो जाता है और उनकी वृद्धि को रोक देता है। कुछ अवस्थाओं में तो यह जीवन को भी नष्ट कर सकता है। ऐसी घटना हमारे देश में कुछ वर्षों पहले भोपाल में हुई थी।

वातावरण का संतुलन एक बार बिगड़ने के पश्चात् फिर से ठीक करना बहुत कठिन और कभी-कभी तो असंभव हो जाता है। वे वैज्ञानिक तथा प्रौद्योग वैज्ञानिक जो इस समस्या के विषय में जागरूक हैं, लोगों को इस बात की शिक्षा दे रहे हैं कि हमें प्रदूषण को रोकना चाहिए।

प्रश्नावली

1. विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक संसाधन कौन-कौन से हैं? क्या आप किसी ऐसी टेक्नालॉजी (प्रौद्योगिकी) का नाम बता सकते हैं जिसका उपयोग इन सभी संसाधनों में किया जाता है?
2. अनवीनीकृत संसाधन किन्हें कहते हैं? चार उदाहरण दीजिये।
3. प्रत्येक प्रमुख प्रौद्योगिकी किसी लघु प्रौद्योगिकी को जन्म देती है तथा उसके विकास में सहायता करती है। इस कथन को कृषि तथा वस्त्र उद्योग के संदर्भ में समझाइये?
4. किसी नई प्रौद्योगिकी को तुरंत अपनाये जाने में कौन-कौन सी बातें मुख्य भूमिका निभाती हैं?
5. चित्र 21.1 की सहायता से निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये:
   1. 15 वर्ष के बाद वृक्षों की संख्या कितनी होगी?
   2. 150 वर्ष के बाद वृक्षों की संख्या कितनी होगी?
   3. मान लीजिए हम 10 के स्थान पर 20 वृक्ष प्रतिवर्ष की दर से लगायें परन्तु 10 वृक्ष प्रतिवर्ष काटना जारी रखें तो ग्राफ कैसा दिखाई देगा? ग्राफ खींचकर दिखाइये।
6. चित्र 21.2 के ग्राफ के स्लोप को किस प्रकार कम किया जा सकता है? क्या इसे इतना कम किया जाना संभव है कि वह क्षैतिज रेखा के समान्तर हो जाय? ऐसा करने के लिए कुछ विधियों का सुझाव दीजिये?